वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 45

परीक्षा

(जैन रामायण)

–रचयित्री–

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती वर्ष (अप्रैल 2006-अप्रैल 2007) के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280236

नवाँ संस्करण	वीर निर्वाण संवत् 2533	मूल्य
2200 प्रति	25 दिसम्बर 2006	28.00 रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

किसी ने ठीक ही कहा है—

Literature is the Mirror of Society.

अर्थात् साहित्य समाज का दर्पण है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में इतना अधिक व्यस्त रहता है कि उसे रोटी, कपड़ा और मकान इनके अलावा कुछ भी सोचने की फुर्सत ही नहीं रहती है। आफिस यदि घर से २० किमी.दूर है तो वहाँ व्यक्ति अवश्य जाता है परन्तु घर के सामने मंदिर होने पर भी वह मंदिर नहीं जा पाता है। क्यों? क्योंकि उसके पास समय नहीं है।

हमारे पूर्वाचार्यों ने प्राचीनकाल में अनेक बड़े-बड़े पुराणग्रन्थों की रचना करके जिनवाणी की सुरक्षा का महान कार्य किया है। पुराने समय में लोग इन ग्रन्थों को बहुत आदर से पढ़ते थे परन्तु आज की युवा पीढ़ी के पास घंटों बैठकर टी.वी. देखने का तो समय है लेकिन १० मिनट भी शास्त्र पढ़ने की फुर्सत नहीं है।

समाज की इस स्थिति को देखकर पूज्य गणिनीप्रमुख

श्री ज्ञानमती माताजी ने उन ग्रन्थों में से साररूप नवनीत की भांति छोटे-छोटे उपन्यासों की आधुनिक शैली में रचना की है। पद्मपुराण (जैन रामायण) नामक ग्रन्थ का आद्योपान्त आलोढन करके उसके सार को ''परीक्षा'' नामक इस पुस्तक में निबद्ध किया है। अत्यन्त मार्मिक शब्दों में लिखे गए इस उपन्यास को पढ़कर हृदय रोमांचित हो उठता है। वास्तव में सती सीता धैर्य और सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थीं। उन्होंने अपने पति मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी द्वारा किए गए अन्यायों को कितनी सरलता से सहन किया। आज तो स्थिति यह है कि जरासी प्रतिकूलता होते ही महिलाएं नानाप्रकार के अनर्थ कर डालती हैं उन्हें अपनी, अपने घर की, समाज की, देश की, मान-मर्यादा का कुछ भी भान नहीं रह जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक ''परीक्षा'' को पढ़कर आप सभी अपने हृदय में धैर्य, सहनशीलता आदि गुणों को धारण करें यही इस पुस्तक की सार्थकता होगी।

प्रस्तावना

-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

भारतीय परम्परा में नारी का पातिव्रत्यधर्म उसका प्रमुख आभूषण माना गया है। कोई स्त्री कितनी ही सुन्दर हो, उसने कितने ही कीमती और सुन्दर गहने पहन रखे हों परन्तु अगर उसके पास शीलरूपी आभूषण नहीं है, तो उसकी सारी सुन्दरता व्यर्थ समझी जाती है।

नारी शब्द की व्याख्या करते हुए किसी ने कहा–न+अरि अर्थात् कोई भी शत्रु नहीं है जिसका, उसे 'नारी' कहते हैं।

प्रस्तुत 'परीक्षा' नामक इस उपन्यास में एक ऐसी सती नारी का रोमांचक कथानक है जिसने बिना किसी अपराध के ही महान कष्टों को भोगकर अपना पातिव्रत्यधर्म निभाया। आप समझ ही चुके होंगे कि यहाँ पर किस सती नारी का गुणगान किया जा रहा है। हाँ! बिल्कुल ठीक समझा आपने! सती सीता नामक शीलशिरोमणि का ही रोमांचक कथानक इस पुस्तक में लेखनीबद्ध किया गया है। उन्होंने अपने गुणों के द्वारा जनमानस के हृदय में अपना ऐसा स्थान बना लिया कि आज सभी लोग मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के साथ सती सीता का नाम भी बड़े आदर से लेते हैं बल्कि देखा तो यह जाता है कि लोग रामसीता की बजाय सीताराम शब्द का उच्चारण करते हैं।

जैसा कि सीता के बारे में यह कहा जाता है कि "सीता पृथ्वी में समा गई" परन्तु सत्यता यह है कि सीता जी ने अग्निपरीक्षा के

बाद आर्यिका पृथ्वीमती माताजी (सीताजी की दादी सास) से आर्यिका दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

जैन सिद्धान्त के अनुसार जो महान आत्माएँ होती हैं वे पृथ्वी में नहीं समाती हैं अपितु वे ऊर्ध्वलोक में निवास करती हैं। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने "सीताजी से बनी है रामायण" नामक काव्य में इन पंक्तियों को बहुत ही सुन्दर ढंग से संजोया है–

धरती में समाने वाली तो पापी आत्माएँ होती हैं।
सीता जैसी सतियाँ ऊरधगामी आत्माएँ होती हैं।।
उसने तो तपकर मरण समाधी, से जीवन का अन्त किया।
फिर अच्युत स्वर्ग में जा प्रतीन्द्र पद, पाकर जीवन धन्य किया।।

इस प्रकार जैनागम के अनुसार तो सीता को पृथ्वी में समाहित बताना बिल्कुल भी न्यायसंगत नहीं है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने पद्मपुराण (जैन रामायण) के आधार से इस प्रकार की अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करके सभी को जैनागम से परिचित कराया है। चूँकि आज के इस व्यस्ततम जीवन में ग्रन्थों को पढ़ने का समय नहीं रहता है अतः इस लघु उपन्यास को पढ़कर आप सभी पाठकगण अपने ज्ञान की वृद्धि करें तथा सती सीता के आदर्श जीवन से धैर्य, सहनशीलता, सहिष्णुता आदि गुणों को धारण करके अपने जीवन को पावन–पवित्र बनाएँ, यही मंगल कामना है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख

आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का

-:संक्षिप्त-परिचय:-

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

जन्मस्थान : टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि : आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१(२२ अक्टूबर १९३४)
गृहस्थ का नाम : कु. मैना
माता-पिता : श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत एवं गृहत्याग : ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।
क्षुल्लिका दीक्षा : चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में
आर्यिका दीक्षा : वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्यश्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

* **साहित्यिक कृतित्व :** अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद एवं संस्कृत टीकाएं तथा २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।

सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

* **तीर्थ निर्माण प्रेरणा :** हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, मांगीतुंगी में १०८ फुट उत्तुंग निर्माणाधीन भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा।

* **महोत्सव प्रेरणा :** पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव ।

* **शैक्षणिक प्रेरणा :** 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

* **रथ प्रवर्तन प्रेरणा :** जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय

-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

जिस हस्तिनापुर में इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कलाप चल रहे हैं, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी, दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकों से जुड़ी वह हस्तिनापुर नगरी एक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। सन् १९७२ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के नाम से दिल्ली में इस संस्था का जन्म हुआ।

सन् १९७५ से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया और अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, कमरे, फ्लैट, कोठियां आदि बन चुके हैं। निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन भी होते रहते हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों एवं धर्मप्रभावना के समाचारों से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९७४ से बराबर निर्बाध गति से चल रहा है। संस्थान के अंतर्गत ही सन् १९७४ में स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से २५० से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित

हो चुके हैं। यहां जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक, गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ आदि के द्वारा धार्मिक शैक्षणिक एवं पारमार्थिक कार्यक्रम चलते रहते हैं। सन् १९७५ से प्रारंभ पंचकल्याणकों में अब तक अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं प्रति ५ वर्षों में होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव में से ४ महोत्सव हो चुके हैं। इस संस्थान द्वारा जहाँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उद्घाटित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का १०४५ दिनों तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण एवं हस्तिनापुर में उसकी अखण्ड स्थापना हुई, सन् १९९८ में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार द्वारा अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हुआ। वहीं भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) से प्रवर्तित "**भगवान महावीर ज्योति**" रथ के भारत भ्रमण से जनमानस भगवान महावीर के विषय में आगमसम्मत ज्ञान से परिचित हुआ है। जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर भव्य दीक्षाएं भी सम्पन्न हुई हैं। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान में ४ फरवरी सन् २००० को प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी द्वारा उद्घाटित "भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव" सम्पूर्ण देश एवं विदेशों में मनाया गया। जिसके अंतर्गत अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ निर्माण आदि कार्यक्रम हुए। सन् २०००-२००१ में संस्थान द्वारा पूज्य

माताजी की प्रेरणा से प्रयाग-इलाहाबाद में **''तीर्थंकर ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ''** का नवनिर्माण हुआ है तथा ६ अप्रैल सन् २००१ को ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाए जाने वाले भगवान महावीर २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव वर्ष में पूज्य माताजी द्वारा रचित ''विश्वशांति महावीर विधान'' का विराट आयोजन प्रथम राष्ट्रीय आयोजन के रूप में राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में अक्टूबर २००१ में सम्पन्न हुआ। उसी जन्मकल्याणक महोत्सव के अंतर्गत सन् २००३-२००४ में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास कार्य द्रुतगति से हुआ है।

कुण्डलपुर विकास संपन्न होने के पहले ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आगामी वर्ष २००५ को ''भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष'' के रूप में मनाने का सारे देश को आह्वान किया और प्रेरणा दी। तदुपरांत पूज्य माताजी ससंघ ने कुण्डलपुर से १४ नवम्बर २००४ को भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि बनारस के लिए विहार किया और पूज्य माताजी के सानिध्य में बनारस में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती ६ जनवरी २००५ को इस पार्श्वनाथ महोत्सव वर्ष का जोर-शोर के साथ सारे देश की जनता के बीच उत्तरप्रदेश के लोक निर्माण मंत्री-श्री शिवपाल सिंह यादव एवं अन्य अतिथियों द्वारा उद्घाटन

किया गया। इस महोत्सव वर्ष के अंतर्गत सर्वप्रथम लम्बे समय से प्रतीक्षित भगवान श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी-सारनाथ में उनकी विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। तदुपरांत टिकैतनगर में भगवान महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पधारे उत्तरप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री माननीय श्री मुलायम सिंह यादव ने भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर 'पार्श्वनाथ वर्ष' का शुभारंभ किया और भगवान पार्श्वनाथ की वह प्रतिमा ''पार्श्वनाथ दि. जैन इण्टर कालेज'' के परिसर में स्थापित की गई है। इसी श्रृंखला में सारे देश में दो वर्षों से भगवान पार्श्वनाथ के जीवन पर आधारित नाटिकाओं, प्रश्नोत्तरी आदि का आयोजन किया जा रहा है एवं अनेकानेक साहित्य का भी प्रकाशन हो रहा है।

इस प्रकार आप सबके सहयोग से संचालित हो रहा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपनी चतुर्मुखी योजनाओं से समाज को सदैव लाभान्वित करता रहे यही मंगल कामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खीरावली, दिल्ली।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९१
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली

परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल जैन पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।

८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले), गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

संरक्षक

१. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमर जैन, मेरठ।
२. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
३. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
४. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
५. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
६. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
७. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी बेसुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी, फलटन (महा.)।
८. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सतारा) महा.।
९. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
१०. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
११. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
१२. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
१३. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
१४. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
१५. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
१६. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
१७. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।

१८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी., विवेक विहार, दिल्ली
१९. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उप्र.)।
२०. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
२१. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
२२. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज)।
२३. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की स्मृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या, शिलांग (मेघालय)।
२४. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसम)।
२५. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंजमण्डी (राज.)।
२६. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)।
२७. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
२८. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
२९. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
३०. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
३१. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
३२. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
३३. स्व. श्री विमल चन्द जैन, मै. रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
३४. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
३५. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
३६. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
३७. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
३८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्र प्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
३९. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
४०. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
४१. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
४२. श्री प्रभा चन्द गोधा, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-६ (राज.)।
४३. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
४४. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
४५. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
४६. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) ३५ एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपाकर रांची (बिहार)।

४७. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-१/२० मॉडल टाउन-III, दिल्ली।
४८. श्री कैलाश चंद जैन, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
४९. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, ४०५ डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
५०. श्रीमती सुषमा जैन ध.प. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
५१. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
५२. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
५३. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गोहाटी।
५४. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी १/१२२, फेज-२, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२।
५५. श्री चन्द्रमोहन बंसल, ११, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-५।
५६. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
५७. श्री सतीश चन्द जैन, ३१ सिविल लाइन, म.नं.-१०, सेक्टर-२, टाइप-५ झांसी।
५८. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
५९. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
६०. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
६१. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
६२. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा, पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
६३. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
६४. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन ३१, सिविल लाईन, सीतापुर।
६५. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन, बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
६६. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
६७. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
६८. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
६९. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
७०. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
७१. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
७२. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
७३. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई
७४. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, बुरहानपुर (म.प्र.)।
७५. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रांवका, बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
७६. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।

७७. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
७८. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
७९. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
८०. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
८१. श्रीमती निशा जैन ध.प. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
८२. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
८३. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
८४. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, कोपरगाँव (महा.)।
८५. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
८६. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
८७. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन, बरुआ सागर (उ.प्र.)।
८८. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी, मेड़तासिटी (नागौर) राजस्थान।
८९. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले), प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-९२।
९०. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
९१. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
९२. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
९३. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
९४. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
९५. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
९६. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
९७. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
९८. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
९९. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
१००. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
१०१. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
१०२. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
१०३. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
१०४. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।

''सीता जी से बनी है रामायण''

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती माताजी

रामायण सुनकर हे बंधू! क्या ऐसा तुम्हें न लगता है।
मर्यादा पुरुषोत्तम का पद, क्या तुमको भ्रमित न करता है।।
उस राम नाम से बनी हुई, रामायण गाई जाती है।
सच पूछो उसमें सीता की ही, सहनशीलता आती है।।१।।

कलियुग की नारी तो सीधे, न्यायालय का पथ अपनाती।
अपने अपराधी पति को, कारावास के अन्दर पहुँचाती।।
नारी पर अत्याचार के व्यापक, समाचार छपने लगते।
पति के विरुद्ध चौपालों में, चर्चा बहुतेक पुरुष करते।।२।।

जितना सीता ने सहन किया, उतने ही कर्म प्रहार हुए।
वन में भी वह पति संग रही, महलों के सुख सब त्याग दिए।।
क्या यही परीक्षा उसे सती, बतलाने में पर्याप्त न थी?
श्रीराम के द्वारा धोखे की, बातें उस प्रति अन्याय ही थीं।।३।।

सह लिया जहाँ तक सहा गया, उसने पति के अन्यायों को।
फिर आखिर उसने ठुकराया, उनकी भी मनोव्यथाओं को।।
बोली हे राम! मुझे तुमने, क्यों झूठ बोल वन भिजवाया।
मुझ गर्भवती नारी के प्रति, कर्त्तव्य तुम्हारा यह था क्या?।।४।।

सौहार्द दिखाते यदि किञ्चित्, तो ऋषि आश्रम में भिजवाते।
या किसी आर्यिका माता की, बसती में मुझको छुड़वाते।।
मेरी रक्षा भी हो जाती, कुछ सम्बोधन भी मिल जाता।
क्या पता तभी मेरा जीवन भी, साध्वी जैसा बन जाता।।५।।

तुम बोलो मौन भला क्यों हो, यदि शेर मुझे आ खा जाता।
तब तीन प्राणियों की हिंसा में, तुमको क्या आनन्द आता।।
कर्मों की प्रबल परीक्षा में, जैसे-तैसे उत्तीर्ण हुई।
अब तुम्हें तुम्हारे बच्चों को, देने हेतू अवतीर्ण हुई।।६।।

इनको जैसे भी बना पिता, माता दोनों का प्यार दिया।
निज दुख से दुखी हुई जब भी, इनमें तुम रूप निहार लिया।।
ये पुण्डरीकपुर के उपवन में, खेल-खेलकर बड़े हुए।
गुरुमुख से विद्याध्ययन किया, तुम सम्मुख देखो खड़े हुए।।७।।

अब इन्हें संभालो हे राजन्! इनके संग ऐसा मत करना।
इतने दिन माँ के संग रहे, अब अपने संग इनको रखना।।
हे मर्यादा पुरुषोत्तम! इनको, अब मर्यादा सिखलाना।
अन्याय करें नहिं अबला पर, यह संशोधन भी करवाना।।८।।

सन्तोष मुझे पतिदेव आज, ये राजपुत्र निज घर में हैं।
मैं मुक्त हुई इनकी जिम्मेदारी से ये रघुकुल में हैं।।
अब एक परीक्षा अंतिम मेरी, ले लो जो भी इच्छा हो।
अग्नी में पड़ूँ या विष खा लूँ, बोलो जो लगता अच्छा हो।।९।।

जनता को खुश करने हेतू, बस राम ने निर्णय कर डाला।
दो अग्निपरीक्षा हे सीते! यह धधक रही भीषण ज्वाला।।
नगरी के बच्चे-बच्चे ने, इस निर्णय को धिक्कारा था।
फिर भी सीता ने शान्तमना, होकर उसको स्वीकारा था।।१०।।

लक्ष्मण, लव-कुश, हनुमान सभी, समझा-समझाकर हार गए।
सन्तों ने अपने तप की भी, सौगन्ध से थे विश्वास दिए।।
पर राम न माने थे किञ्चित्, वे अपनी हठ पर खड़े हुए।
अपनी सुकुमारी पत्नी के प्रति, निष्ठुर बनकर खड़े रहे।।११।।

सीता के मुख पर तेजस्वी, आभा उस समय छलकती थी।
कर नहीं तो डर कैसा उसकी, काया से क्रान्ति झलकती थी।।
मन में ईश्वर को नमन किया, पति को प्रणाम कर कूद गई।
हो गए राम मूर्च्छित तत्क्षण, सीता की यादें डूब गईं।।१२।।

लोगों ने समझा सीता का, इतिहास यहीं हो या खत्म।
लेकिन कुछ क्षण में जयजयकारों, के स्वर से गूँजा था गगन।।
देवों ने धरती की सतियों का, सदा सदा सम्मान किया।
सीता के इस उपसर्ग में भी, आकर प्रत्यक्ष प्रमाण दिया।।१३।।

अग्नि की धधकती ज्वाला को, जल के सरवर में बदल दिया।
सरवर के मध्य सिंहासन पर, सति को गौरव से बिठा दिया।।
वह जनकनंदिनी ध्यानलीन, बैठी है स्वर्णसिंहासन पर।
पुष्पों रत्नों की वर्षा हो रही, शीलशिरोमणि के ऊपर।।१४।।

हे सीते! तुम तो धन्य धन्य, हर्षाश्रू सबके निकल पड़े।
साकेतपुरी के कण-कण से, अब मिलन के आंसू टपक पड़े।।
इस समाचार को पाते ही, श्रीराम भी अब दौड़े आए।
अपराध क्षमा कर दो देवी! हम तुम्हें लिवाने हैं आए।।१५।।

तुम बिना महल भी सूना है, हे रानी! चलो संभालो तुम।
अब मेरे ऊपर भी अपना, पूरा अधिकार चलाओ तुम।।
हे वैदेही! अब तेरे बिन, इक पल मैं नहिं रह सकता हूँ।
इतने दिन कैसे कटे मेरे, यह कैसे मैं कह सकता हूँ ?।।६।।

मत देर करो मेरी सीता, देखो यह रथ तैयार खड़ा।
मेरे सपनों की रानी तेरे, सम्मुख तेरा राम खड़ा।।
जो दण्ड मुझे देना चाहो, स्वीकार मुझे सब करना है।
मत इंतजार अब करवाओ, सारे दुख सहज बिसरना है।।१७।।

मुझको तो था विश्वास तभी, जब लंका से वापस लाया।
मुनियों के मन सम है विशुद्ध, मेरी सीता जी की काया।।
पर नगर अयोध्या की जनता, ने अन्यायी मुझको माना।
बस इसीलिए जंगल में तुमको, पड़ा मुझे था भिजवाना।।१८।।

यह निश्चित ही अन्याय भरा, कर्त्तव्य राम बन कर डाला।
लेकिन मेरे मन में तब से ही, धधक रही थी विरह ज्वाला।।
तुमको बतलाकर कहो भला, कैसे तुमको तज सकता था?
रघुकुल की इज्जत हे सीते! फिर कैसे मैं कर सकता था?।।१९।।

बीती को भूलो प्राण प्रिये! अब सुख के दिन फिर आए हैं।
तुम जैसी शीलशिरोमणि को, पाकर हम धन्य कहाए हैं।।
माँ चलो उठो लव कुश बोले, अब दुःखी पिता को शांत करो।
भाभी के चरणों में लक्ष्मण, पड़ गए नमन स्वीकार करो।।२०।०।

सबके भावों की भावुकता, लख भी सीता दृढ़ बनी रही।
बोली इसमें नहिं दोष किसी का, कर्मों की है गती यही।।
मैंने ही पूर्व भवों में कोई, अशुभ कर्म बाँधे होंगे।
उनका ही फल अब मिला मुझे, संचित कुछ और अभी होंगे।।२१।।

हे नाथ! क्षमा करना मुझको, यह आज्ञा पल नहिं पाएगी।
अब आपकी सुकुमारी सीता, अपने मन से वन जाएगी।।
दीक्षा लेकर आर्यिका मात बन, स्त्रीलिंग नशाएगी।
निज आतमराम को पाने को, सीता महाव्रत अपनाएगी।।२२।।

होकर अधीर श्रीरामचन्द्र, सीता के सम्मुख बिलख पड़े।
इतनी कठोर मत बनो प्रिये, ये पुत्र रो रहे खड़े-खड़े।।
सीता मानो अब दृढ़ता की, देवी बनकर ही आई थी।
इसलिए किसी के मोह की उस पर, नहीं पड़ी परछाईं थी।।२३।।

अब कथन बंद करके उसने, निज केशलोंच प्रारंभ किया।
कुछ केश राम को दे सीता ने, द्वन्द्व जाल को बंद किया।।
बेहोश हो गए रामचन्द्र, सीता का त्याग न सह पाये।
सब परिजन पुरजन भी रोए, पर विचलित उसे न कर पाए।।२४।।

वह तो चल दी उस उपवन में, जहाँ पृथ्वीमती विराजी थीं।
दशरथ की माँ सीता की दादी, सास बनी माताजी थीं।।
उनके चरणों में जा सीता, हो गई समर्पित भक्ती से।
हे माँ! मुझको दे दो दीक्षा, घर त्याग दिया अब युक्ती से।।२५।।

साध्वी दीक्षा लेकर सीता, उनके ही संघ में बैठी थी।
होकर सचेत आ गए राम, देखा तो वहीं सीता भी थी।।
सब माताओं को नमस्कार कर, सीता को भी नमन किया।
हे मातः! कहकर पूरबकृत, दोषों को राम ने शमन किया।।२६।।

यह जैनधर्म की रामायण में, सत्य कथानक आया है।
सीता ने पृथ्वीमति माता को, अपना गुरू बनाया है।।
यह किंवदन्ति चल गई तभी, सीता पृथ्वी में समा गई।
समझो वह भाव समर्पण था, नहिं धरती में वह समा गई।।२७।।

धरती में समाने वाली तो, पापी आत्माएँ होती हैं।
सीता जैसी सतियाँ ऊरधगामी आत्माएँ होती हैं।।
उसने तो तपकर मरणसमाधी, से जीवन का अन्त किया।
फिर अच्युत स्वर्ग में जा प्रतीन्द्र, पद पाकर जीवन धन्य किया।।२८।।

स्वर्गों के सुख को भोग पुनः, वह इन्द्र धरा पर आएगा।
मानुषयोनी में फिर तपकर, अविनश्वर सुख को पाएगा।।
है मोक्षमहल इक अति सुन्दर, उसका राजा बन जाएगा।
फिर सिद्धिप्रिया से कर विवाह, यहाँ कभी न वापस आयेगा।।२९।।

सच पूछो सीता के कारण, रामायण लिखी है कवियों ने।
सीता के प्रति आकर्षण है, भारत की सारी गलियों में।।
नारी ने अपने संग सदा, नर को भी पूज्य बनाया है।
हर कष्ट को सहने में नारी ने, कीर्तीमान बनाया है।।३०।।

हैं वर्तमान में भी कितनी, सतियाँ भारत की निधियाँ हैं।
"चन्दनामती" ये देश-धर्म के, प्रति बलिदानी कृतियाँ हैं।।
नारी है खान नरों की भी, जो वीरों को पनपाती है।
माँ-पत्नी-बहन आदि बनकर, अपना कर्त्तव्य निभाती है।।३१।।

जब-जब रामायण पढ़ी सुनी, इक चिन्तन मन में आया है।
भारत की सतियों को जाने, क्यों पुरुषवर्ग ने सताया है।।
सोचो तो सृष्टिव्यवस्था में, स्त्री व पुरुष हैं सहभागी।
पुरुषों की अर्धांगिनी सदा, नारी है पति की अनुरागी।।३२।।

दोनों का ही सम्मान उचित, अपमान किसी का नहिं होवे।
भावों में है अरमान यही, इस देश का गौरव नहिं खोवे।।
भारत की संस्कृति टिकी आज भी, नारी के पतिव्रत पर है।
सारे देशों में इसीलिए, भारत का गौरव ऊपर है।।३३।।

परीक्षा

(जैन रामायण)

(१)

सीता का स्वयंवर

कुछ क्षण विश्रांति करके राजा जनक निःशंक हो गोपुर में प्रवेश करते हैं। वहाँ जाकर देखते हैं कि चारों तरफ जहाँ-तहाँ फैले हुए और फूले हुए रंग-बिरंगे पुष्प अपनी मधुर सुगंधि से मन को आकृष्ट कर रहे हैं। सुन्दर-सुन्दर बावड़ियों में स्वच्छ शीतल जल लहरा रहा है और उसमें उतरने की सीढ़ियाँ मणि एवं स्वर्ण से निर्मित हैं। उद्यान में अशोक, आम्र, जामुन आदि के वृक्ष अपने पल्लवों को हिला-हिलाकर और पक्षियों के कलरव शब्दों से मानों उन्हें बुला ही रहे हैं। कुछ आगे और बढ़कर जनक महाराज

देखते हैं तो उन्हें एक बहुत ही सुन्दर जिनमंदिर दिखाई देता है। वह मंदिर स्वर्ण के हजारों बड़े-बड़े खम्भों को धारण किये हुए है, मेरु के शिखर के समान जिसकी प्रभा है, जिसकी भूमि हीरे से निर्मित है और जिसमें मोतियों की जाली से सुशोभित रत्नमयी झरोखे बने हुए हैं। इस अदृष्टपूर्व मंदिर को देखकर राजा जनक मन में सोचने लगते हैं—

अहो! इस मायामयी घोड़े ने तो मेरा बहुत ही बड़ा उपकार किया है जो कि मुझे हरण करके यहाँ ऐसे पवित्र स्थान में छोड़ गया है। भला, वह घोड़ा कौन था? कोई मेरा पूर्वजन्म का मित्र तो नहीं था कि जिसने मुझे ऐसे अनुपम स्थान का दर्शन कराने का उपक्रम रचा हो? जो भी हो, यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि जिससे मुझे इस जिनमंदिर का दर्शन हुआ है। ऐसा सोचते-सोचते महाराजा जनक अन्दर प्रवेश करके विधिवत् तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को पंचांग नमस्कार करते हैं। पुनः अनेक संस्कृत स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति करके निःशंक हो वहीं पर बैठ जाते हैं।

उधर चपलवेग विद्याधर मायामयी घोड़े के रूप को छोड़कर अपने भृत्य के रूप में आकर रथनूपुर के राजा चन्द्रगति को समाचार देता है कि राजन् ! आपकी आज्ञा के अनुसार मिथिलापुर के राजा जनक मेरे द्वारा लाये जाकर उद्यान के जिनमंदिर में बैठे हुए हैं। राजा चन्द्रगति अपने

बहुत से सामन्त आदि को साथ में लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं। पहले श्री जिनेंद्रदेव की वन्दना करके पुनः राजा जनक से कुशल-क्षेम पूछकर परस्पर में एक दूसरे का परिचय पूछते हैं। अनन्तर परस्पर में विश्वास को प्राप्त होते हुए मधुर वार्तालाप शुरू कर देते हैं। सबसे प्रथम विद्याधरों के राजा चन्द्रगति बोलते हैं—

"अहो! मैं आज बहुत ही पुण्यशाली हूँ जो कि आपका दर्शन हुआ है। हे राजन् ! मैंने बहुत से लोगों के मुख से सुना है कि आपके शुभ लक्षणों वाली सीता नाम की एक सुन्दर कन्या है, सो वह कन्या आप मेरे पुत्र भामंडल के लिए दे दीजिए। आपके साथ संबंध स्थापित कर मैं अपने आपको परम भाग्यशाली समझूँगा।"

इसके उत्तर में राजा जनक कहते हैं—

"हे विद्याधर राज! यह सब हो सकता था परन्तु मैंने तो वह कन्या राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र के लिए देनी निश्चित कर ली है अतः अब तो मैं विवश.....।"

"ओह!.....आपने रामचन्द्र को देने का निर्णय क्यों लिया है? उसमें ऐसी क्या विशेषता है?"

"मित्र! अभी कुछ ही दिन पूर्व मेरी मिथिला नगरी में अर्धबर्बर देश के म्लेच्छों ने धावा बोल दिया था, वे धूर्त लोग टिड्डी दल के समान हमारे देश को नष्ट—भ्रष्ट करने में

लग गये थे। उस समय पूर्व की मित्रता के नाते मैंने अयोध्या के अधिपति श्री दशरथ महाराज के पास सहायता के लिए खबर भेजी थी। वहाँ से उसी क्षण उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण अपनी बहुत सी सेना लेकर मिथिला नगरी आये थे और अपने विशेष पौरुष के बल से उन म्लेच्छों को जीतकर हमें निरापद किया था। उसी उपकार के बदले में मैंने श्रीराम को अपनी पुत्री सीता देना निश्चित कर लिया है।"

चन्द्रगति विद्याधर नरेश और उनके सामन्त अट्टहासपूर्वक हँसते हुए कहते हैं—

"अहो! म्लेच्छों को जीतने मात्र से ही तुमने उन भूमिगोचरी राजपुत्रों का क्या पराक्रम देखा है? ये भूमिगोचरी लोग विद्या के माहात्म्य से रहित होते हैं अतः निरन्तर हीन-दीन दिखते हैं। इनकी शूरवीरता और सम्पत्ति का क्या माहात्म्य है? अरे जनक! बताओ तो सही, भला तुमने उनमें और पशुओं में क्या अन्तर देखा है?"

इत्यादि प्रकार से भूमिगोचरियों की निन्दा सुनकर राजा जनक अपने दोनों कानों को हाथों से ढक लेते हैं और बोलने लगते हैं—

"हाय, हाय! बड़े कष्ट की बात है कि मैं भूमिगोचरी राजाओं की निंदा कैसे सुन रहा हूँ। क्या त्रिजगत् में प्रसिद्ध लोक को पवित्र करने वाला ऐसा श्री आदिनाथ भगवान्

का वंश आप लोगों के कर्णगोचर नहीं हुआ है? हे विद्याधरों! बताओ तो सही, क्या पंचकल्याणक के स्वामी तीर्थंकर भगवान् आप विद्याधरों की भूमि में जन्म ले सकते हैं? क्या चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि महापुरुष तुम्हारे वंश में जन्म लेते हैं? अहो! जिस अयोध्या आदि पवित्र भूमि में, जिन इक्ष्वाकु आदि वंशों में तीर्थंकरों का जन्म हुआ है तुम लोग उस भूमि की और उनके वंशजों की कैसे निन्दा कर रहे हो?

इक्ष्वाकु वंश के राजा अनरण्य की सुमंगला महारानी की कुक्षि से दशरथ का जन्म हुआ है। इस दशरथ महाराजा के चार महादेवियाँ हैं। अपराजिता महादेवी ने 'पद्मनाभ' नाम के श्रीराम को जन्म दिया है, सुमित्रा से 'लक्ष्मण' नाम के प्रतापशाली पुत्र का जन्म हुआ है, कैकेयी ने 'भरत' पुत्र को उत्पन्न किया है और सुप्रभा देवी ने 'शत्रुघ्न' नाम के पुत्र को जन्म दिया है। ये चारों ही पुत्र महान् कांतिमान हैं, उस रघुकुल के तिलक हैं। मैं इन महापुरुषों की निन्दा नहीं सुन सकूँगा।"

इस प्रकार से वार्तालाप के मध्य कुछ समस्या हल न होते देखकर राजा चन्द्रगति धीरे से उठ गये और अनेक विश्वस्त विद्याधरों से विचार-विमर्श करके वापस आकर बैठ गये। पुनः राजा चन्द्रगति बोले—

"राजन् ! अधिक कहने से क्या? हमारी एक शर्त सुनो। हमारे यहाँ आयुधगृह में देवों के द्वारा सुरक्षित ऐसे दो धनुष रखे हुए हैं। एक का नाम है वज्रावर्त और दूसरे का सागरावर्त। यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषों को डोरी सहित करने में समर्थ हों तब तो मैं उन्हें अधिक शक्तिशाली समझूँगा और वह आपकी सीता को प्राप्त कर सकेगा अन्यथा हम लोग जबरदस्ती आपकी कन्या का अपहरण करके यहाँ ले आयेंगे।"

"ठीक, ठीक! आपकी शर्त हमें मंजूर है।"

इतना सुनते ही बहुत से सामन्त और विद्याधर उन दोनों धनुषों को साथ लेकर बहुत से विद्याधरों को साथ लेकर राजा जनक को विमान में बिठाकर मिथिलानगरी में आ गये। शहर के बाहर उनको ठहराकर उनके आतिथ्य सत्कार की व्यवस्था करके राजा जनक महल में पहुँचे। राजमहल में 'राजा को मायामयी घोड़ा उड़ाकर पता नहीं कहाँ ले गया है?' इस कारण से अशांत वातावरण बना हुआ था। महाराजा को देखते ही सबके जी में जी आया। साधारण कुशल समाचार के बाद राजा ने थोड़ा सा भोजन किया और विश्रामकक्ष में चले गये। राजा को चिन्ता निमग्न देख रानी विदेहा ने आन्तरिक स्थिति जाननी चाही तब राजा ने ज्यों की त्यों सारा वृत्तान्त सुना दिया। रानी विदेहा जोर-जोर से रुदन करने लगी और कहने लगी—

"हाय-हाय! मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा पाप किया था कि जो मेरे पुत्र को जन्म होते ही कोई दुष्ट बैरी हर ले गया। तब से इस सीता को देख-देखकर ही हम लोग उस बालक के दुःख को भूले हुए थे कि हाय! अब विधाता को वह भी सहन नहीं हो रहा है जब मेरी कन्या को ये विद्याधर लोग हर ले जायेंगे तब मैं कैसे जीवित रहूँगी?....."

इसी बीच राजा जनक अपनी भार्या को सांत्वना देकर उठते हैं और मंत्रियों से सलाह कर स्वयंवर मण्डप बनवाकर स्वयंवर की घोषणा करा देते हैं। राजा दशरथ के पास अपना खास व्यक्ति भेजकर सपरिवार उन्हें बुला लेते हैं चूँकि विद्याधरों के द्वारा इन्हें इस कार्य के लिए मात्र बीस दिन ही दिये गये थे।

(२)

स्वयंवर मंडप में एक तरफ उच्चस्थान पर दोनों धनुष रखे हुए हैं और एक तरफ उच्चस्थान पर सात सौ कन्याओं के मध्य सीता सुन्दरी बैठी हुई है। उसके चारों तरफ शूरवीर योद्धा हाथ में तलवार आदि लेकर सुरक्षा में सन्नद्ध हैं। हजारों राजपुत्र सीता को प्राप्त करने की इच्छा से वहाँ आये हुए हैं। एक-एक करके क्रम से उस धनुष को चढ़ाने के लिए वहाँ पहुँचते हैं, किन्तु वह धनुष अग्नि के स्फुलिंगे

छोड़ रहा है और उसके चारों तरफ भयंकर सर्प फुँकार रहे हैं। राजपुत्र निकट जाकर उसके तेज से परास्त होकर लौट पड़ते हैं। कोई-कोई तो वहीं पर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर लोटने लगते हैं। कोई अपने प्राणों की रक्षा हेतु भागने लगते हैं। श्रीरामचन्द्र गंभीर मुद्रा से बैठे हुए सभी की नाना चेष्टाओं को देख रहे हैं। अंत में श्री जनक महाराज की दृष्टि जब रामचन्द्र की ओर उठती है कि वे महापुरुष अपने स्थान से उठकर मन्थर गति से धनुष के पास आते हैं। अपने स्वामी को आते हुए देखकर जैसे भृत्य निस्तब्ध हो जाता है अथवा अपने गुरु के सामने जैसे शिष्य विनीत हो जाता है वैसे ही वह धनुष मूल स्वभाव में आ जाता है। उसके रक्षक हजारों देवता मानों स्वामी की प्रतीक्षा में स्थिर हो जाते हैं।

लीलामात्र में श्रीरामचन्द्र उस धनुष को उठाकर उसे चढ़ा देते हैं। श्रीरामचन्द्र की गर्जना और उस धनुष की टंकार से सारी दिशाएं क्षणभर के लिए बहरी हो जाती हैं। सभा में बैठे हुए लोग तो भंवर में पड़े हुए के समान घूमने लगते हैं। आकाश से 'साधु-साधु, ठीक-ठीक' इस प्रकार से देव और विद्याधरों के शब्द गूँज उठते हैं। देवों के द्वारा पुष्पों की वर्षा हो जाती है और व्यंतर लोग नृत्य करने लगते हैं।

उसी क्षण सीता अपने हाथ में सुन्दर माला लेकर मंदगति से वहाँ आ जाती है और श्रीराम के गले में माला

पहना कर उन्हीं के पास खड़ी हो जाती है। लज्जा से संकुचित हो रही सीता के साथ श्रीरामचन्द्र वहाँ से आकर अपने आसन पर बैठ जाते हैं।

अनंतर लक्ष्मण उठकर भाई की आज्ञा लेकर द्वितीय सागरावर्त धनुष के पास पहुँचकर उसे चढ़ा देते हैं। तब चन्द्रवर्धन विद्याधर अपनी अठारह कन्याओं को उनके समीप खड़ी कर देते हैं। मंगलवाद्य और नगाड़ों की ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हो जाती है।

उधर भरत के मन में विकल्प उठता है कि अहो! देखो, हम दोनों का एक कुल है, एक पिता हैं, पर इन दोनों अग्रजों ने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्य की मंदता से मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका अथवा व्यर्थ के इस संताप से क्या? इस असार संसार में सारभूत एक धर्म ही है। इत्यादि रूप से सोचते हुए भरत के मुख की कांति हीनता को देखकर माता कैकयी ने पुत्र के मन की चेष्टा को जानकर तत्काल ही राजा दशरथ से कहा-"स्वामिन् ! आप शीघ्र ही पुनः स्वयंवर विधि से राजा जनक के भाई कनक की पुत्री से भरत का पाणिग्रहण कर दीजिए।"

लोक-व्यवहार में कुशल दशरथ ने शीघ्र ही अपने मित्र जनक को सूचित किया। द्वितीय दिवस पुनः स्वयंवर विधि से राजा कनक की पुत्री लोक-सुन्दरी ने भरत के गले

में वरमाला डाल दी। अनंतर बड़े उत्सव के साथ इन तीनों भाइयों की विधिवत विवाह विधि सम्पन्न हुई। पिता जनक चन्द्रवर्धन और कनक ने अपनी पुत्रियों को यथायोग्य शिक्षा देकर हर्ष और विषाद से मुक्त होते हुए सबका अयोध्या के लिए प्रस्थान करा दिया और विद्याधर लोग भी राम, लक्ष्मण के गुणों में आकृष्ट होते हुए रथनूपुर चले गये।

कुछ दिन व्यतीत होने के बाद पुनः भामण्डल ने सभी बड़े जनों के समक्ष अपने मित्र से कहा—

"मित्र! आप बड़े दीर्घसूत्री हैं। उस सीता की आशा में डूबते हुए मेरा कितना समय निकल गया है, मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है?"

इस प्रकार के भामंडल के वचनों को सुनकर एक बृहत्केतु नामक विद्याधर बोल उठा—

"अब तक इस सीता संबंधी बात को क्यों छिपाया जा रहा है? सारा वृतान्त प्रकट कर देना चाहिए कि जिससे कुमार इस विषय में निराश हो जावें।"

तब सभी ने चन्द्रगति विद्याधर नरेश को आगे करके लड़खड़ाते हुए अक्षरों में सारी विगत घटना सुना दी और बोले—

"कुमार! उन दोनों देवोपनीत धनुषों के चले जाने से अब तो हम लोग बिल्कुल सारहीन निःसार हो गये हैं। इस

समय राम-लक्ष्मण के पुण्य की कल्पना कर सकना भी हम लोगों की शक्ति से परे है।"

इन सारी बातों को सुनकर भामंडल आवेश में उठ खड़ा होता है और बोलता है—

"ठीक है, अब मैं स्वयं राम की शक्ति का परीक्षण करने जा रहा हूँ।" विमान में बैठ कर बहुत से सामंत और सेना को साथ लेकर भामंडल आकाश मार्ग से आर्यखण्ड की ओर जा रहा है। कुछ दूर पहुँच कर आकाश मार्ग से ही उसने पृथ्वीतल पर विदग्ध नाम का एक देश देखा। मन में सोचने लगा 'यह नगर मैंने पूर्व में भी देखा है' इतना सोचते ही उसे जातिस्मरण हो गया और वह वहीं मूर्च्छित हो गया। इस स्थिति में सभी विद्याधर उसे तत्क्षण ही पिता के पास वापस ले आये। अनेक शीतोपचार से सचेत होने पर अत्यधिक लज्जा से नम्रित हो मुख नीचा कर विलाप करने लगा। तब चन्द्रगति पुत्र को अपनी गोद में लेकर मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—

"बेटा! तुम इतने विक्षिप्त क्यों हो रहे हो?" भामंडल ने कहा-

"हे पिताजी! मैं पूर्व जन्म में विदग्धपुर का राजा कुलमंडित था। मैंने किसी समय पिंगल नाम के ब्राह्मण की पत्नी का अपहरण कर लिया था। अनंतर पाप से डरकर

एक बार दिगंबर मुनि के समीप अणुव्रत आदि ग्रहण कर लिये। उसके प्रभाव से मरणकर जनक की रानी विदेहा के गर्भ में आ गया, उसी समय उस ब्राह्मणी का जीव भी मरकर विदेहा के गर्भ में आ गया। उधर वह पिंगल आर्तध्यान से तपस्या के द्वारा मरकर महाकाल नाम का असुर हो गया। वही द्वेष वश मुझे जन्मते ही हरण कर ले गया, किन्तु कुछ दया रूप परिणाम के होने से उसने मेरे कानों में कुण्डल पहनाकर और पर्णलघ्वी विद्या के बल से मुझे आकाश से छोड़ दिया। मध्य में ही गिरते हुए अपने उद्यान में स्थित आपने मुझे झेल लिया और माता पुष्पवती ने बड़े ही प्यार से मेरा लालन-पालन किया है। ओह.....वह सीता मेरी सगी बहन है। नारद ने मुझे चित्रपट दिखाया और उस सीता में आसक्त हो उसे पाने के लिए मैं बेचैन हो उठा। धिक्कार हो इस अज्ञान को.....।"

कुमार भामंडल के मुख से सारी विस्तृत भवावली सुनकर राजा चन्द्रगति उसी क्षण संसार से विरक्त हो गये। वे भामंडल का राज्याभिषेक करके अयोध्या के उद्यान में स्थित 'सर्वभूतहित' मुनिराज के निकट पहुँच गये और मुनिराज से दीक्षा की याचना की। मुनिराज ने भी सभी के विस्तृत भव-भवांतर सुनाये। उस समय रात्रि में ही बंदीजन जोर-जोर से शब्द करने लगे कि—

"राजा जनक का लक्ष्मीशाली पुत्र भामंडल जयवंत हो रहा है।"

इस उच्चध्वनि को सुनते ही अयोध्या के महल में सोई हुई सीता जाग उठी और विलाप करने लगी-

"हाय! जन्मकाल में ही मेरे भाई का अपहरण हुआ था, वह कहाँ है?"

रामचन्द्र ने सीता को सान्त्वना देते हुए कहा—

"हे वैदेहि! शोक छोड़ो, हो सकता है तुम्हारा भाई आज तुम्हें मिल जाये।" पुनः सब लोग महा-वैभव के साथ प्रभात के होने के पहले ही महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँच गये। गुरु की वंदना कर यथास्थान बैठ गये। प्रभात होते चन्द्रगति विद्याधर का दीक्षा महोत्सव देखा। पुनः मुनि के द्वारा परिचय को प्राप्त भामण्डल से मिलकर सीता भाई से चिपट कर बहुत ही रोती रही। दशरथ ने तत्क्षण ही मिथिला नगरी आदमी भेजा जो कि विद्या के विमान से जनक को परिवार सहित ले आये। जन्म देने के बाद प्रथम बार पुत्र का मुख देखकर रानी विदेहा पहले तो मूर्च्छा को प्राप्त हो गई पुनः सचेत हो पुत्र को प्राप्त कर एक अद्‌भुत ही आनन्द को प्राप्त किया। एक महीने तक सब लोग अयोध्या में ठहरे। अनन्तर भामण्डल पिता के साथ मिथिला पहुँचे, वहाँ का राज्य अपने चाचा कनक को देकर अपने माता-पिता को साथ लेकर रथनूपुर आ गये।

(३)

श्रीरामचन्द्र का वनवास

अयोध्या के सभी जिनमंदिरों की सजावट देखते ही बनती है चूँकि आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से आष्टाह्निक महापर्व आया है। अतः दशरथ महाराज ने महामहिम पूजा की तैयारी की है। उस मंदिर की शोभा तो अनिर्वचनीय है। पंचरंगी रत्नचूर्ण से मंडल पूरा गया है। दशरथ राजा ने आठ दिन का उपवास ले रखा है। तुरही के विशाल शब्दों की ध्वनि से सारी अयोध्या मुखरित हो रही है। राजा दशरथ अनेक बन्धु-बांधवों के साथ जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का महाअभिषेक करके अष्टद्रव्यमय पूजन की सामग्री से महापूजा प्रारंभ कर रहे हैं। सहज सुगंधित खिले हुए पुष्प और स्वर्ण एवं रजत के पुष्प, सामग्री की शोभा बढ़ा रहे हैं। जैसे इन्द्र सपरिवार, नन्दीश्वर द्वीप में आठ दिन लगातार पूजा-विधि सम्पन्न करता है, वैसे ही महाराजा दशरथ सपरिवार आष्टान्हिक पूजा में तत्पर हैं।

आठ दिन के अनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गईं तब राजा दशरथ ने सबके लिए महापवित्र, शांतिकारक गंधोदक भिजवाया। तीन रानियों के पास गंधोदक यथासमय पहुँचा। किन्तु छोटी रानी सुप्रभा के पास गंधोदक नहीं पहुँचा। उसे इस बात का इतना दुःख हुआ कि वह मरने के लिए तैयार

हो गई और एक नौकर से चुपचाप विष लाकर देने को कहा। मध्याह्नोपरांत राजा दशरथ घर आये उन्होंने सुप्रभा को शयन कक्ष में उन्मनस्क देख स्थिति समझनी चाही कि इसी बीच में वह नौकर विष लेकर पहुँच गया। राजा ने विष को स्वयं हाथ में लेकर एक तरफ रखा, रानी से उसका कारण 'गंधोदक न मिलना' सुनकर उसे समझाने लगे। इसी बीच में वृद्ध कंचुकी गंधोदक लेकर वहाँ पहुँच गया तब रानी ने गंधोदक मस्तक पर धारण कर संतोष व्यक्त किया।

इसी बीच राजा ने कंचुकी से कहा—

"अरे नीच अधम! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ?"

भय से काँपते हुए उस कंचुकी ने महाराज को घुटने टेककर प्रणाम किया पुनः हाथ जोड़कर लड़खड़ाते शब्दों में अपने बुढ़ापे की दुर्दशा का वर्णन करना शुरू किया—

"स्वामिन्! इस बुढ़ापे से मैं अब जल्दी-जल्दी चलने में सर्वथा असमर्थ हूँ। इस लाठी के सहारे बड़े कष्ट से पैर उठाता हूँ। कमर के झुक जाने से चलते-चलते कई बार गिर जाता हूँ, आँखें जवाब दे चुकी हैं, कानों से कम सुनता हूँ। चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परा से चला आया है अतः छोड़ने में असमर्थ हो रहा हूँ, मुझे निकटवर्ती मृत्यु से इतना भय नहीं है कि जितना भय भविष्य में होने वाली आपके चरणों की सेवा के अभाव का है। आपकी सम्माननीय

आज्ञा ही मेरे जीवित रहने का कारण है। देव! मेरे इस शरीर को जरा से जर्जरित जानकर मुझ पर क्रोध करना आपको उचित नहीं है। अतः हे धीर! प्रसन्नता धारण करो।'

कंचुकी के द्वारा बुढ़ापे के वर्णन को सुनते-सुनते राजा दशरथ को एकदम संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वे सोचते हैं कि "यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीरवीर वंशज विरक्त हो पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवन में प्रवेश कर जाते हैं।"

अनंतर कुछ काल व्यतीत हो जाने पर बड़े भारी संघ से घिरे हुए मनःपर्ययज्ञान के धारी 'सर्वभूतहित' नामक आचार्य अयोध्या के महेंद्रोदय उद्यान में पधारे। राजा दशरथ सपरिवार मुनि वंदना को निकल पड़े। गुरु के दर्शन करके उनसे अपने भव-भवांतरों को सुनकर पूर्णतया विरक्त हुए राजा राज दरबार में आये और राम के राज्याभिषेक का विचार मंत्रियों से व्यक्त कर दिया। स्वामी को दीक्षा के सन्मुख देख मंत्रियों में और अन्तःपुर में सर्वत्र शोक का वातावरण छा गया।

पिता को विरक्त देख भरत भी प्रतिबोध को प्राप्त हो साथ ही दीक्षा लेने के लिए सोचने लगा। भरत के चेहरे से उसकी विरक्ति का अभिप्राय समझकर कैकेयी अत्यर्थ चिंतित हो गई। पुनः वह कुछ सोचकर पति के पास पहुँचकर निवेदन करती है—

"हे नाथ! जब युद्ध के समय मैंने आपकी सहायता की थी उस समय प्रसन्न होकर आपने समस्त राजाओं और पत्नियों के सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा।' सो हे नाथ! इस समय वह वर मुझे दीजिए।"

"हे प्रिये! ' तू अपना अभिप्राय बता।' जो तुझे इष्ट हो सो मांग, अभी देता हूँ।"

कैकेयी पति के वियोग से होने वाले दुःख से दुःखी हो आंसू डालती हुई नीचे मुख करके बोलती है—

"हे नाथ! मेरे पुत्र को राज्य प्रदान कीजिए।"

तब दशरथ ने कहा—

"इसमें लज्जा की क्या बात है? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा। शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण से मुक्त कर दिया है।"

उसी समय दशरथ, राम को बुलाकर खिन्न चित्त से कहते हैं—

"हे वत्स! कला की पारगामिनी इस चतुर कैकेयी ने पहले भयंकर युद्ध में अच्छी तरह मेरे सारथी का काम किया था। उस समय संतुष्ट होकर मैंने सभी के समक्ष इसे वर मांगने के लिए कहा था, सो यह आज अपने पुत्र के लिए राज्य माँग रही है। उस समय प्रतिज्ञा कर यदि इस समय मैं इसके इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो भरत दीक्षित

हो जावेगा और यह पुत्र के शोक में प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहार से मेरी अपकीर्ति चारों तरफ फैल जायेगी। साथ ही यह भी मर्यादा नहीं है कि बड़े पुत्र के योग्य होते हुए छोटे पुत्र को राज्य दिया जाये। जब भरत को राज्य दे दिया जायेगा तब क्षत्रिय संबंधी परम तेज को धारण करने वाले तुम लक्ष्मण के साथ कहाँ जाओगे? यह मैं नहीं जानता हूँ। तुम पंडित हो, अतः बताओ इस दुःखपूर्ण, बहुत बड़ी चिंता के मध्य में स्थित अब मैं क्या करूँ?"

प्रसन्नमना राम पिता के चरणों में दृष्टि लगाये हुए विनयपूर्वक निवेदन करते हैं—

"हे पिताजी! आप अपने सत्यव्रत की रक्षा कीजिए और मेरी चिंता छोड़िये। यदि आपकी अपकीर्ति हो तो मुझे इन्द्र की लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है? जो पिता को पवित्र करे अथवा शोक से उनकी रक्षा करे, पुत्र का पुत्रपना यही है।"

जब पिता पुत्र में ऐसी उत्तम चर्चा चल रही थी इसी बीच भरत दीक्षा के लिए तत्पर हो नीचे उतरने लगे। यह देख लोग हाहाकार करने लगे। पिता ने स्नेह से आर्द्र हो उसे रोक लिया और अपनी गोद में बिठा कर उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—

"हे पुत्र! तू राज्य का पालन कर, मैं तपोवन को जा रहा हूँ।"

भरत ने कहा—"पूज्य पिता जी! मैं भी दीक्षा ग्रहण करूँगा।'

"पुत्र! अभी तू नवीन वय से युक्त है, अतः कुछ दिन राज्य सुख का अनुभव कर पुनः दीक्षा लेना। देख! गृहस्थाश्रम में भी धर्म धारण किया जाता है।"

"हे तात! यदि कर्मों का क्षय घर में ही हो जाता तो आप दीक्षा क्यों ले रहे हैं? अहो! जो पुत्र को दुःख से तारे और तप की अनुमोदना करे यही तात का तातपना है पुनः आप मुझे इस राज्य में क्यों फँसा रहे हैं?"

"हे वत्स! तू धन्य है, तू प्रतिबोध को प्राप्त है, सचमुच में तू उत्तम भव्य है। फिर भी हे धीर! तूने कभी भी मेरे स्नेह को भंग नहीं किया है, तू विनयी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है। सुन, एक बार युद्ध में मेरे प्राणों के संशय के समय तेरी माँ के उपकार से प्रसन्न हो मैंने उसे वर दिया था सो उसने आज तेरे लिए राज्य की याचना की है। इन्द्र के समान निष्कंटक राज्य कर, जिससे असत्य के कारण मेरी अपकीर्ति न हो। चूँकि अपत्य अर्थात् पुत्र का अपत्यपना यही है कि जो माता-पिता को शोकरूपी महासागर में नहीं गिरने दे।"

तदनंतर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्री रामचन्द्र ने भरत का हाथ पकड़कर मधुर शब्दों में कहना शुरू किया—

"भाई! देखो, अभी तुम्हारी वय दीक्षा के योग्य नहीं है पुनश्च यह तुम्हारी माता यदि तुम्हारे जैसे पुत्र के रहते हुए

मरण को प्राप्त हो तो क्या यह तुम्हारे लिए उचित है? अहो! पिता के सत्य वचन की रक्षा के लिए हम शरीर को भी छोड़ सकते हैं फिर तुम बुद्धिमान होकर भी लक्ष्मी को क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हो? मैं किसी नदी के किनारे, पर्वत पर, अथवा वन में निवास करूँगा जहाँ कि कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर।"

इतना कहकर रामचन्द्र पिता को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। उसी क्षण दशरथ मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। उधर रामचन्द्र अपनी माता अपराजिता के पास पहुँचे, उन्हें जैसे-तैसे सान्त्वना देकर सीता के पास पहुँचे। सीता रामचन्द्र के बहुत कुछ समझाने पर भी साथ चलने के लिए ही कटिबद्ध रही तब सीता को साथ ले पुनः पिता के पास आकर उन्हें सान्त्वना देकर अनेकों मंत्रियों, राजाओं से तथा परिवार के अन्य लोगों से आदरपूर्वक पूछकर श्रीरामचन्द्र चल पड़े। मंत्री लोग बहुत से रथ, हाथी, घोड़े आदि लाये थे किन्तु सबकी उपेक्षा कर वे पैदल ही चल पड़े। लक्ष्मण भी एक क्षण के लिए सोचते हैं—

"हाय! यह कैसा अनर्थ है? पिता जी ने यह क्या किया? रामचन्द्र के समान दुर्लभ हृदय तो मुनि के भी जब कभी ही होता होगा। ऐसे महामना रामचन्द्र वन में विचरण करेंगे। क्या मैं आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ? क्या बलपूर्वक इन्हें राज्य लक्ष्मी में उत्सुक करूँ? अथवा इस क्रोध से क्या प्रयोजन?

उचित या अनुचित यह सब पिताजी और बड़े भाई ही जानते हैं। मुझे तो इस समय इनकी सेवा में चल पड़ना ही उचित है।"

बस, इतना सोचकर लक्ष्मण पिता-माता व परिवार की आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्र के साथ चल पड़े।

उस समय का दृश्य बहुत ही करुण था। सीता के साथ राम-लक्ष्मण आगे बढ़े जा रहे हैं। माता-पिता और समस्त परिवार भरत और शत्रुघ्न पुत्रों के साथ धारा प्रवाह अश्रु बरसा रहे हैं। परन्तु राम-लक्ष्मण दृढ़ निश्चयी थे अतः वे सान्त्वना देते हुए बार-बार चरणों में गिरकर जैसे-तैसे माता-पिता आदि को वापस लौटाते हैं और जैसे-तैसे महल से बाहर निकल पाते हैं। उस समय भी बहुत से राजा लोग, मंत्री-अमात्य लोग और पुरवासी उनके साथ ही चलते चले जाते हैं। शहर में नाना तरह की चर्चा होने लगती है सब अपने मकान छोड़-छोड़कर भाग आते हैं—

"अरे माता! यह क्या हो रहा है? यह सब किसने कर डाला।"

"हाय, हाय, यह नगरी अभागिन हो गई, अब हम सब भी इन्हीं के साथ चलेंगें।"

"देखो, देखो, यह सीता कैसी जा रही है? अरे पतिव्रता स्त्रियों का यह उदाहरण है।"

"हाय, हाय , इस नगर के देवता कहाँ चले गये? यह

बड़ा अनुचित हो रहा है।"

"अरे भाई! भरत तो दीक्षा लेना चाहता था किन्तु राजा दशरथ ने यह क्या कर दिया?"

"ओहो! राम-लक्ष्मण को भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई?"

इत्यादि प्रकार से बोलती हुई और अश्रुओं से पृथ्वीतल को सींचती हुई समस्त प्रजा राम-लक्ष्मण के पीछे चल पड़ती है। कोई उनके चरणों में बार-बार नमस्कार करते हैं, कोई पूजा करते हैं, कोई भक्तिवश उनसे वार्तालाप करना चाहते हैं। प्रजा की नाना चेष्टाओं को देखते हुए रामचन्द्र अत्यर्थरूप से उन्हें सम्बोधते हैं और वापस जाने को कहते हैं किन्तु लोग उनकी कुछ भी नहीं सुनकर पागलवत् पीछे-पीछे चलते रहते हैं।

वे दोनों राजपुत्र सीता सहित अरहनाथ के मंदिर में प्रवेश करते हैं। संध्या का समय है। दो दरवाजों के बाद तृतीय दरवाजे पर सबको रोक दिया जाता है। उस समय वहाँ मंदिर में अपराजिता, सुमित्रा आदि माताएं आ जाती हैं। नाना प्रकार से विलाप करती हुई पुत्रों से चलने का आग्रह करती हैं पुनः लाचार हो वापस दशरथ के पास पहुँचती हैं और कहती हैं-

"हे वल्लभ! शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए इस रघुकुलरूपी जहाज को रोको, लक्ष्मण सहित राम को वापस बुलाओ।"

"देवियों! यह जगत् मेरे अधीन नहीं है। मेरी इच्छानुसार यदि कार्य होवे तो मैं तो यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणी सदा ही सुखी रहें, किसी को किंचित् मात्र भी दुःख न हो किन्तु यह जगत तो कर्मों के अधीन है, बाँधव आदि इष्ट पदार्थों से कभी भी किसी को तृप्ति न हुई है और न होगी।....आप लोग पुत्रवाली हो इसलिए अपने पुत्रों को लौटा लो। मैं तो राज्य का अधिकार छोड़ चुका हूँ और संसार के भय से भीत हूँ अतः मुनि व्रत धारण करूँगा।"

अर्द्धरात्रि के समय हाथ में दीपक को लेकर लक्ष्मण और सीता सहित रामचन्द्र मंदिर के बाहर निकलकर चल पड़े। जब प्रातः सभी सामन्त व पुरवासी लोगों ने देखा कि रामचन्द्र धोखा देकर चले गये हैं तो वे पुनः दौड़-दौड़कर उनके निकट पहुँच जाते हैं और भावपूर्वक पुनः-पुनः प्रणाम करके उनके साथ-साथ चलने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राम-लक्ष्मण धीरे-धीरे परियात्रा नामक वनी में पहुँचते हैं। वहाँ शर्वरी नाम की नदी थी उसी के तट पर बैठकर रामचन्द्र कुछ लोगों को तो वापस लौटा देते हैं और कुछ लोग बहुत भारी प्रयत्न से भी नहीं लौटते हैं। तब रामचन्द्र कहते हैं-

"बन्धुओं! हम लोगों के साथ तुम्हारा इतना ही समागम था। अब हमारे और तुम्हारे बीच यह नदी सीमा बन गई है। इसलिए अब तुम सभी लोग लौट जाओ। पिताजी ने तुम

सबके लिए भरत को राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसी की शरण में रहो।"

इतना कहकर उन सबकी करुण प्रार्थना की सर्वथा उपेक्षा करने वाले रामचन्द्र सीता को लेकर नदी पार कर जाते हैं। सामंत, राजागण और प्रजागण रोते हुए इधर-उधर घूमने लगते हैं पुनः उस वन में एक मंदिर में पहुँचते हैं। वहाँ पर महामुनि के दर्शन करके विरक्त हो दिगम्बर मुनि बन जाते हैं कुछ लोग अणुव्रती श्रावक बन जाते हैं और कुछ लोग सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर रोते-विलखते वापस आ जाते हैं।

(४)

राजा दशरथ भरत का राज्याभिषक करके महेंद्रोदय उद्यान में पहुँचते हैं और बहत्तर राजाओं के साथ सर्वभूतहित गुरु के पास दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उत्तम संहनन से युक्त होने से गुरु की आज्ञा लेकर एकाकी विहार करने लगते हैं चूँकि वे जिनकल्पी हैं। यद्यपि मुनिराज दशरथ सदा ही शुभ ध्यान की इच्छा रखते हैं फिर भी कदाचित्-क्वचित् उनका मन पुत्रशोक के कारण कलुषित हो जाता है तब वे योगारूढ़ हो संसार की स्थिति का विचार करके मन को शांत कर लेते हैं।

इधर पति और पुत्र के वियोग से दुःखी हुई अपराजिता

और सुमित्रा के अश्रुओं की अविरल धारा को देखकर कैकेयी अतीव दुःखी होती है, पश्चात्ताप करती है और भरत को समझाकर सभी सामंतों को साथ लेकर अपराजिता आदि के साथ रामचन्द्र के पास पहुँचकर पुनः-पुनः क्षमा याचना करते हुए उन्हें वापस चलने का आग्रह करती है—

"हे पुत्रों! मेरे द्वारा जो भी गलती हुई है क्षमा करो और चलो! ये तुम्हारी मातायें शोक में पागल हो रही हैं, तुम लोग इतने निष्ठुर क्यों हो रहे हो?"

भरत निवेदन करते हैं—

"हे नाथ! आपने राज्य देकर मेरी यह क्या विडम्बना की है? जो हुआ, सो हुआ अब भी स्थिति को संभालो।"

इत्यादि प्रकार से अनुनय-विनय करने पर भी श्री रामचन्द्र कहते हैं—

"भाई! क्षत्रिय पुत्र एक बार जो निश्चय कर लेते हैं उसे अन्यथा नहीं करते हैं। अतः तुम सब शोक छोड़ो और सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो। यदि तुम समझते हो कि यह अनुचित है सो अनुचित नहीं है चूँकि मैं स्वयं तुम्हें राज्याधिकार दे रहा हूँ।" ऐसा कहते हुए पुनरपि तमाम राजाओं के समक्ष स्वयं श्री रामचन्द्र उसी वन में भरत का राज्याभिषेक करके अनेकों मधुर वचनों से समझा-बुझाकर सभी को वापस भेज देते हैं।

भरत वापस अयोध्या आकर जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान की महान पूजा करते हैं पुनः 'द्युति' नाम के आचार्य के निकट पहुँचकर उनकी वंदना करके यह प्रतिज्ञा करते हैं कि "मैं राम के दर्शन मात्र से मुनिव्रत धारण कर लूँगा। अनन्तर महामुनि भरत को समझाते हैं—

"हे भरत! जब तक तुम घर में हो तब तक गृहस्थ के धर्म का पालन करो क्योंकि यह गृहस्थ धर्म मुनि धर्म का छोटा भाई है।" पुनः उस धर्म का विस्तार से वर्णन करते हैं। भरत महाराज गृहस्थ धर्म को विशेष रीति से पालने हेतु डेढ़ सौ स्त्रियों के बीच में रहकर भी जल से भिन्न कमल के सदृश भोगों से अनासक्त रहते हुए मुनिव्रत की भावना भाते रहते हैं।

(५)

परोपकार

यत्र-तत्र विचरण करते हुए श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के साथ दशांगपुर नगर के समीप पहुँचते हैं। समीप के उद्यान में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। ऊजड़ होते हुए गाँव को देखकर लक्ष्मण ने पता लगाया और श्री रामचन्द्र से निवेदन किया।

"देव! इस नगर के राजा वज्रकर्ण ने यह प्रतिज्ञा ली हुई है कि मैं जिनेन्द्र देव और निर्ग्रन्थ गुरु के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करूँगा, सो उसने अपने अंगूठे में पहनी

हुई अंगूठी में मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान कर रखी है। जब वह अपने स्वामी सिंहोदर की सभा में जाता था तब उस प्रतिमा को लक्ष्य कर नमस्कार करता था। किसी ने यह भेद सिंहोदर महाराज से कह दिया तब उसने इस सम्यग्दृष्टि के राज्य पर चढ़ाई करके चारों तरफ से इसे घेर लिया। अब यह यह बेचारा वज्रकर्ण पूर्ण संकट के मध्य स्थित है।"

पुनः रामचन्द्र की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सिंहोदर की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर सिंहोदर को बाँध लाते हैं। रामचन्द्र वज्रकर्ण को भी बुला लेते हैं, सिंहोदर द्वेष को छोड़कर जैनधर्म का कट्टर श्रद्धालु हो जाता है। उस समय वज्रकर्ण, सिंहोदर आदि राजागण लक्ष्मण की तीन सौ कन्याओं के साथ विवाह विधि करना चाहते हैं। किन्तु लक्ष्मण कहते हैं—

"मैं जब तक अपने बाहुबल से अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लूँ तब तक स्त्रियों को साथ नहीं रखूँगा।"

कुछ दिन बाद ये लोग अन्यत्र किसी सुन्दर वन में पहुँचते हैं। लक्ष्मण जल हेतु पास के सरोवर पर पहुँचते हैं। उधर एक राजकुमार जलक्रीड़ा के लिए वहाँ आया था सो उन्हें देखकर अपने तम्बू में बुला लेता है तथा वन में विराजे हुए रामचन्द्र और सीता को अपने स्थान पर बुलाकर उन्हें स्नान-भोजन आदि से संतृप्त कर आप एकांत में जाकर अपने स्त्रीरूप को प्रकट कर लेता है। उस समय रामचन्द्र पूछते हैं-

"हे कन्ये! तू कौन है जो कि नाना वेष को धारण कर रही है?" वह कन्या कहती है—

'हे देव! इस नगर का स्वामी बालिखिल्य है। उसे म्लेच्छ राजा ने जीतकर बंदी बना लिया है। उनके स्वामी सिंहोदर भी जब उन राजा को नहीं छुड़ा सके तब उन्होंने कहा कि इसकी गर्भवती रानी के यदि पुत्र उत्पन्न होगा तो वह इस राज्य का अधिकारी होगा। कुछ पाप के उदय से मैं पुत्री पैदा हुई तब मंत्री ने राजा से पुत्र जन्म की ही सूचना करके मुझे भीतर ही भीतर बड़ा किया है। मेरा नाम कल्याणमाला रखा है। माता और मंत्री के सिवाय 'मैं पुत्री हूँ' इस रहस्य को कोई नहीं जानता है। मेरे पिता के बंदी होने से मेरी माता शोक से सूखकर दुबली होती चली जा रही है।"

इतना बोलकर कन्या खूब जोर से रोने लगी। सीता ने उसके मस्तक पर हाथ फेरकर सान्त्वना दी और रामचन्द्र-लक्ष्मण ने कहा—

"भद्रे! तूने बहुत अच्छा किया है, तू अभी उसी वेष में रह, अति शीघ्र ही अपने पिता को बन्धन मुक्त देखेगी।"

पुनः रात्रि में ये लोग उस तम्बू से चुपचाप निकल कर चले जाते हैं। कुछ दूर पहुँचकर भीलों से इनका भयंकर युद्ध होता है। भीलों का राजा कोकनन्द इन दोनों के रूप को

देखकर इनका परमभक्त हो इन्हें आत्म समर्पण कर देता है। उस समय राम कहते हैं–

" हे भद्र! तू अब शीघ्र ही बालिखिल्य राजा को छोड़ दे।"

रामचन्द्र की आज्ञानुसार वह उन्हें बंधन मुक्त करके इतने दिनों तक हड़पी गयी उस राज्य की सारी सम्पत्ति भी उन्हें वापस कर देता है। भविष्य में इस कल्याणमाला का विवाह लक्ष्मण के साथ हो जाता है।

आगे चलते-चलते एक दिन प्यास से व्याकुल हुई सीता के साथ ये लोग एक ब्राह्मण के आँगन में ठहर जाते हैं। ब्राह्मणी बहुत ही आदर से ठण्डा जल पिलाती है। कुछ क्षण बाद कपिल ब्राह्मण घर आकर इन लोगों को अपमानित करने लगता है। उस समय लक्ष्मण क्रोध से युक्त हो उसकी टाँग पकड़कर उसे आकाश में घुमाकर जमीन पर पटकने को तैयार होते हैं किन्तु सीता के मना करने पर वे उसे जीवित छोड़कर वापस वन की तरफ चले आते हैं। इधर बहुत तेज बारिश शुरू हो जाती है और ये तीनों लोग भीगते हुए एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं। उस वट वृक्ष पर रहने वाला इभकर्ण यक्ष अपने स्वामी को सूचना देता है तब 'पूतन' नाम का यक्षराज स्वयं वहाँ आकर इन्हें बलभद्र और नारायण जानकर उनके पुण्य के माहात्म्य से एक सुन्दर नगरी की रचना कर देता है और उसका 'रामपुर' यह

नाम प्रसिद्ध हो जाता है। जब चारों तरफ एक चर्चा फैल जाती है कि महाराज रामचन्द्र अर्हंत धर्मानुयायी को मनोवाँछित धन देते हैं। तब वह कपिल ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी के साथ गुरु के पास जैनधर्म ग्रहण कर महाराजा रामचन्द्र के दरबार में प्रवेश करता है किन्तु लक्ष्मण को देखते ही वह घबड़ाकर भागने लगता है। उस समय रामचन्द्र उससे कहते हैं—

"डरो मत, डरो मत, इधर आवो।"

तब वह जैसे-तैसे साहस बटोर कर उनकी स्तुति करके अपनी पूर्व की गलती पर अतीव पश्चात्ताप व्यक्त करता है। रामचन्द्र उसे मालामाल कर देते हैं। वह घर में आकर राजा जैसे भोगों को भोगता हुआ काल यापन करता है किन्तु उसके हृदय में यह शल्य चुभती रहती है कि मैंने घर में आये हुए इन देवों का अपमान किया था। अंत में वह इस शल्य से निकलने का उपाय ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

कुछ दिन बाद उस रामपुरी से निकलकर ये लोग वैजयन्तपुर के वन में पहुँच जाते हैं। वहाँ रात्रि में गले में फाँसी लगाकर मरने के लिए तैयार हुई वनमाला की लक्ष्मण रक्षा करके उसका पाणिग्रहण स्वीकार करते हैं।

किसी समय ऐसा समाचार मिलता है कि नंद्यावर्त का राजा अतिवीर्य भरत के राज्य पर चढ़ाई करने वाला है, तब रामचन्द्र एकान्त में मंत्रणा करके सीता को एक मंदिर में

आर्यिका के समीप छोड़कर आप दोनों भाई सुन्दर नर्तकी का रूप धारण कर अतिवीर्य की सभा में पहुँचकर खूब सुन्दर नृत्य करते हैं। पुनः भरत के गुणों का बखान करके सभा में क्षोभ उत्पन्न कर अतिवीर्य को बाँधकर वापस मंदिर में सीता के पास आ जाते हैं। राम, लक्ष्मण सीता के साथ वहाँ पर आर्यिका वरधर्मा की पूजा करते हैं। उस काल में अतिवीर्य विरक्त हो श्रुतधर मुनिराज के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

जब भरत को यह समाचार मिलता है कि दो नर्तकियों ने अतिवीर्य को पराजित कर दिया है कि जिससे वह दीक्षित हो गया है तब उन्हें महान् आश्चर्य होता है कि आखिरकार यह कार्य किसने किया है? पुनः वे अतिवीर्य मुनि के पास जाकर उन्हें नमस्कार कर क्षमायाचना करते हैं।

कुछ दिन बाद ये क्षेमांजलिपुर में पहुँचकर ठहर जाते हैं वहाँ पर जितपद्मा के पिता राजा शत्रुंदम की शर्त को सुनते हैं कि 'जो महाभाग मेरे द्वारा छोड़ी गई शक्तियों को झेलने में समर्थ होगा, वही मेरी पुत्री जितपद्मा को वरेगा।' लक्ष्मण को इस बात का पता लगते ही शत्रुंदम की सभा में पहुँचकर बिना नमस्कार किये ही गर्जना करते हैं कि यदि तुझमें कुछ साहस है, तो अपनी शक्तियों को छोड़। राजा शत्रुंदम शक्ति नायक अस्त्रों को छोड़ता है और लक्ष्मण एक

नहीं पाँच-पाँच शक्तियों को लीलामात्र में झेल लेते हैं।

जितपद्मा यद्यपि पुरुषद्वेषिणी थी फिर भी वहाँ आकर शीघ्र ही वह लक्ष्मण के गले में वरमाला डाल देती है। वहाँ क्षेमांजलिपुर में कुछ दिन रहकर ये लोग आगे बढ़ते हुए वंशस्थल नगर के समीप आ जाते हैं।

(६)

गाँव के बाहर उद्यान में ठहरे हुए रामचन्द्र देख रहे हैं कि शहर के लोग जल्दी-जल्दी बाहर भागे जा रहे हैं। तब एक मनुष्य से रामचन्द्र पूछते हैं—

"हे भद्र! आप सभी लोग किस कारण यहाँ से भागे जा रहे हो?"

उसने कहा—

"देव! इस पर्वत के शिखर पर रात्रि में बहुत ही भयंकर शब्द होता है कि जिसे सभी लोग श्रवण कर सहन करने में समर्थ नहीं हैं। आज तीसरा दिन है उस भयंकर शब्द से ऐसा लगता है कि मानों पृथ्वी हिल रही है। लोगों के कान बहरे हो जाते हैं। अतः सभी लोग शाम को यहाँ से भागकर पास के एक गाँव में ठहर जाते हैं और प्रातः होते ही वापस आ जाते हैं।"

यह सुनकर सीता ने कहा—

"स्वामिन्! जहाँ सब लोग जा रहे हैं अपन भी वहीं चलें। पुनः प्रातः वापस यहाँ आ जायेंगे।"

तब रामचन्द्र ने हंसकर कहा—

"देवि! यदि तुम्हें भय लगता है तो तुम इन लोगों के साथ ही वहाँ चली जाओ और सुबह यहाँ आकर हम दोनों को ढूँढ लेना। इस पर्वत पर यह भयंकर शब्द किसका है? सो हम लोग तो अवश्य ही देखेंगे। ये दीन लोग बेचारे बाल-बच्चे सहित हैं। इनकी आखिर इस भय से रक्षा कौन करेगा?"

सीता यह सुनकर काँपती हुई आवाज में बोलती है—

"हमेशा आप लोगों की हठ केकड़े की पकड़ के समान विलक्षण ही है उसे दूर करने के लिए भला कौन समर्थ है?"

वह पुनः श्रीराम के पीछे-पीछे चलने लगती है। अतीव थकान के बाद ऊपर चढ़कर ये लोग चारों तरफ दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ क्या देखते हैं कि दो मुनिराज उत्तम ध्यान में आरूढ़ हैं। उनको देखते ही इन लोगों की थकान समाप्त हो जाती है और हर्ष से विभोर हो निकट पहुँचते हैं। उस समय मुनियों के शरीर में अनेक सर्प और बिच्छू लिपटे हुए थे जो अति भयंकर दिख रहे थे। उन्हें देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मण जैसे-तैसे उन जन्तुओं को अपने धनुष के अग्रभाग से दूर करते हैं किन्तु पुनः पुनः वे जन्तु वहाँ आ जाते हैं।

अनन्तर भक्ति से भरी सीता निर्झर के जल से उन मुनियों के चरणों का प्रक्षालन करती है, गन्ध का लेपन करती है। पुनः लक्ष्मण के द्वारा लाकर दिये गये सुगंधित पुष्पों से उनके चरणों की पूजा करती है।[१] पश्चात् अंजलि जोड़कर तीनों जन खूब स्तुति करते हैं। रामचन्द्र वीणा बजाते हैं और सीता भक्ति में विभोर हो सुन्दर नृत्य करती है।

धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो जाता है और चारों तरफ अंधकार अपना साम्राज्य फैला लेता है। उसी समय ऐसा विचित्र शब्द सुनाई देता है कि मानों यह आकाश ही भेदन कर डालेगा। रुण्ड-मुण्ड विकराल रूप दिखाने लगते हैं। डाकिनी नाचने लगती हैं। राक्षस, भूत, पिशाचों का अट्टहास होने लगता है। सीता घबड़ाकर रामचन्द्र से चिपट जाती है तब रामचन्द्र बोलते हैं—

"हे देवि! हे शुभमानसे! डरो मत, सर्व प्रकार के भय को दूर करने वाले इन मुनियों के चरणों का आश्रय लेकर बैठ जाओ।"

---

१. अथोद्वर्त्य चिरं पादौ तयोर्निर्झरवारिणा।
गंधेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुरुभावया।।४४।।
आसन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वन सौरभैः।
लक्ष्मीधरापितैः शुक्लैः पूरितांतरमर्चितौ।।४५।।
(पद्मपुराण, पर्व ३९ पृ. ११)

इतना कहकर रामचन्द्र सीता को मुनि के चरणों के समीप बिठाकर स्वयं लक्ष्मण के साथ धनुष को तान कर खड़े हो जाते हैं। इन दोनों के धनुष की टंकार से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों आकाश से वज्र ही गिर रहे हों। तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ नाम का देव घबड़ा कर भाग जाता है। उन ज्योतिषी देव के जाते ही सब चेष्टाएं तत्क्षण ही विलीन हो जाती हैं।

उसी क्षण मुनिराज क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर घातिया कर्मों का नाश कर देते हैं और दोनों को एक साथ ही केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। समय मात्र में ही चतुर्निकाय देव अपने वाहनों पर सवार हो वहाँ एकत्रित हो जाते हैं। दोनों मुनि गंधकुटी में विराजमान हो जाते हैं। उस समय वहाँ पर रात दिन का भेद समाप्त हो जाता है। बारह सभा में सब यथास्थान बैठ जाते हैं। इन्द्रादि लोग केवलज्ञान महोत्सव मनाकर भगवान् की दिव्यध्वनि को श्रवण करते हुए अपने-अपने कोठे में बैठ जाते हैं। राम-लक्ष्मण भी सीता के साथ केवली भगवान् की पूजा करके मनुष्य के कोठे में जा बैठते हैं। श्री रामचन्द्र प्रश्न करते हैं-

"प्रभो! इस देव ने आप पर अथवा अपने पर ही यह उपसर्ग क्यों किया है?" केवली भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है—

"पद्मिनी नगर के राजा विजयपर्वत का एक अमृतस्वर नाम का दूत था उसकी उपयोगा नाम की भार्या थी और उदित और मुदित नाम के दो पुत्र थे। अमृतस्वर का एक वसुभूति नाम का मित्र था, जो उपयोगा के साथ गुप्त रूप से व्यभिचार कर्म करता था। एक दिन उपयोगा की प्रेरणा से उसने अमृतस्वर को मार डाला। पुत्रों को विदित होने से पितृघाती वसुभूति को इन दोनों ने भी जान से मार दिया। कुछ दिन बाद उदित और मुदित दोनों भाई दीक्षा लेकर मुनि हो गये और कई भवों के बाद ये सिद्धार्थ नगर के राजा क्षेमंकर की विमला देवी रानी के पुत्र हो गये। इनका देशभूषण और कुलभूषण ये नाम रखा गया। सागरसेन नामक महाविद्वान के पास ये दोनों विद्याध्ययन करने लगे और उस विद्याध्ययन में ये इतने तन्मय हुए कि इन्हें अपने घर का ही कुछ पता नहीं रहा। विद्याध्ययन के अनन्तर विवाह योग्य देखकर पिता ने राजकन्यायें बुलाई हैं ऐसा इन्हें विदित हुआ। दोनों भाई उस समय नगर की शोभा देखते हुए बाहर जा रहे थे कि अकस्मात् उनकी दृष्टि ऊँचे महल के झरोखे में बैठी हुई एक कन्या पर पड़ी। दोनों ही भाइयों ने उस कन्या के लिए अपने-अपने मन में एक-दूसरे भाई के वध करने का विचार बना लिया। उसी समय बंदी के मुख से यह शब्द निकला कि-"राजा क्षेमंकर और महारानी विमला सदा

जयवन्त रहें कि जिनके ये देवों के समान दोनों पुत्र हैं तथा झरोखे में बैठी हुई यह कमलोत्सवा कन्या भी धन्य है कि जिसके ये दोनों भाई हैं।"

बंदी के मुख से ऐसा सुनकर 'अरे! यह हमारी बहन है' ऐसा सोचकर उसी क्षण दोनों भाई परम वैराग्य को प्राप्त हो गये।

"अहो! हम लोगों के द्वारा इस भारी पाप को धिक्कार हो, धिक्कार हो, धिक्कार हो। अहो! मोह की दारुणता तो देखो कि जिससे हमने बहन की ही इच्छा की। हम लोग तो प्रमाद से ऐसा विचार मन में आ जाने से ही दुःखी हो रहे हैं। पुनः जो जानबूझ कर ऐसा पाप करते होंगे उन्हें क्या कहना चाहिए?"

इत्यादि रूप से सोचते हुए दोनों भाई एक-दूसरे से अपने मन की बात कहकर दीक्षा के लिए तैयार हो गये। माता-पिता आदि के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी ये दीक्षित हो नाना देशों में विहार कर यहाँ आये और प्रतिमायोग में स्थित हो गये। जो वह हमारे पिता को मारने वाला वसुभूति था वह अनेक पर्यायों में भ्रमण कर एक बार अनुंधर नाम का तापसी हो गया और मिथ्या तप के प्रभाव से ज्योतिषी देवों में अग्निप्रभ देव हो गया। एक समय इसने अनन्तवीर्य केवली के मुख से यह सुना कि मुनिसुव्रत भगवान के तीर्थ

में देशभूषण कूलभुषण केवली होंगे। सो यहाँ हम दोनों को देखकर इसने सोचा कि मैं 'अनन्तवीर्य केवली' के वचनों को मिथ्या कर दूँ।' इस भाव से तथा पूर्व के वैर के निमित्त से इसने हम दोनों पर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। पुनः तुम्हें 'बलभद्र' समझ भयभीत हो तिरोहित हो गया है।

अनन्तर दिव्यध्वनि से तमाम लोग धर्मामृत पीकर तृप्त हुए। राम ने यह सुना कि मैं इसी भव से मोक्ष प्राप्त करूँगा। रामचन्द्र को चरम शरीरी जान समस्त राजागण जयध्वनि के साथ उनकी स्तुति कर उन्हें नमस्कार करते हैं। वंशस्थल नगर के राजा सुरप्रभ राम से अपने नगर में चलने के लिए बहुत कुछ आग्रह करते हैं किन्तु वे स्वीकार न कर उसी पर्वत पर निवास करते हैं। तब राजा सुरप्रभ वहीं पर तमाम ध्वजा, तोरण आदि लगाकर भूमि को अतिशय रम्य कर देते हैं और तो क्या उस समय श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते हैं, वहाँ-वहाँ पृथ्वी तल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये जाते हैं। जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्ण से चित्रित अतिशय सुखद स्पर्श वाले आसन और स्थान बनाये गये हैं। भोजनशाला आदि की उत्तम व्यवस्था की गयी है।

गौतम स्वामी कहते हैं कि—

"हे राजन् ! जगत के चन्द्र स्वरूप रामचन्द्र ने उस पर्वत

पर भगवान् जिनेन्द्र देव की हजारों प्रतिमाएं बनवाई थीं। जिनमें सदा महामहोत्सव होते रहते थे। ऐसे राम के बनवाये हुए जिन-मंदिरों की पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं। उन मंदिरों में सर्व लोगों द्वारा नमस्कृत पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएं अतिशय शोभायमान हो रही थीं।"

अनन्तर एक दिन रामचन्द्र लक्ष्मण से कहते हैं—

"अब आगे क्या करना है? इस उत्तम पर्वत पर सुख से बहुत समय व्यतीत किया है, जिनमंदिरों के निर्माण से उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त की है। हे भाई! देखो, ये राजा उत्तम-उत्तम सेवा के वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो अपना संकल्पित कार्य नष्ट होता है। यद्यपि इन भोगों से हमें कोई प्रयोजन नहीं है तो भी, ये भोग हमें क्षण भर के लिए नहीं छोड़ते हैं। यहाँ रहते हुए हमारे जो भी दिन व्यतीत हो गये उनका फिर से आगमन नहीं होगा। हे लक्ष्मण! सुनते हैं कर्णरवा नदी के उस पार दण्डक वन है जहाँ भूमिगोचरियों का पहुँचना प्रायः कठिन है। अपन वहीं चलें, देशों से रहित उस वन में भरत की आज्ञा का प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ अपना घर बनायेंगें और शोक से व्याकुल हुई अपनी माताओं को वहीं ले आयेंगे।"

ऐसा सुनकर लक्ष्मण ने कहा—

"जो आज्ञा!" उस समय वंशस्थल का राजा बहुत दूर

तक उन दोनों को छोड़ने आता है पुनः शोकाकुल हो वापस चला जाता है। ये लोग निर्मोह भाव से आगे बढ़ते जा रहे हैं।

(७)

आहार दान

आकाश मार्ग से आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनिराजों का पड़गाहन करके श्रीरामचन्द्र सीता के साथ भक्तिपूर्वक आहार दान दे रहे हैं, सामने वृक्ष पर बैठा एक गिद्ध पक्षी एकटक देख रहा है। उस आहारदान के समय देवतागण आकाश से रत्नवृष्टि करने लगे, दुंदुभि बाजे बजने लगे।

इधर पंचाश्चर्य वृष्टि हो रही है, उधर गिद्ध पक्षी को मुनिराज के दर्शन से अपने अनेकों पूर्वभवों का स्मरण हो जाता है। वह आकुल-व्याकुल होकर वृक्ष के नीचे आ जाता है। उसे निकट आया देख सीता घबड़ा कर हल्ला मचाते हुए उसे दूर करने का प्रयत्न करती है किन्तु वह न हटकर पास में ही रखे हुए मुनि के चरणोदक को पीने लगता है। चरणोदक के प्रभाव से उसी समय उसका शरीर रत्नराशि के समान नाना प्रकार के तेज से युक्त हो जाता है। उसके दोनों पंख सुवर्ण के सदृश, पैर नील मणि के सदृश, शरीर नाना रत्नों की कांति के सदृश एवं चोंच मूंगे के सदृश दिखने लगती है। अपने आपको अन्य रूप

हुआ देख वह हर्षित होता हुआ देवदुंदुभि की ध्वनि के साथ नृत्य करने लगता है।

आहार के अनन्तर मुनिराज रामचन्द्र की प्रेरणा से पास के शिलातल पर बैठ जाते हैं उस समय वह पक्षी मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर उनके निकट हर्षाश्रु को गिराता हुआ विनीत भाव से बैठ जाता है। रामचन्द्र कौतुक पूर्ण दृष्टि से पक्षी को देखते हुए गुरु के चरणों में नमस्कार कर प्रश्न करते हैं—

"भगवन् ! अत्यन्त विरूप का धारक यह पक्षी क्षणमात्र में रत्नों की कांति का धारक कैसे हो गया?" मुनिराज कहते हैं—

"रामचन्द्र! इसे अपने अनेकों भवों का जातिस्मरण हो आया है अतः यह घबड़ाकर अब धर्म की शरण में आया है।"

"प्रभो! इसे क्या जातिस्मरण हुआ है?"

"सुनो!"

इसी देश में कर्णकुण्डल नाम का एक मनोहर देश था। उस देश का परमप्रतापी महामानी दण्डक नाम का राजा था। उसकी रानी परिव्राजकों की भक्त थी। राजा दण्डक भी रानी के वशीभूत होने से उसी पापपोषक धर्म का आश्रय लेता था। किसी समय राजा ने ध्यान में स्थित एक महामुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। कई दिन बाद एक श्रावक उधर से निकला, यह दृश्य देखकर घबराया हुआ

वह मुनि के गले से सर्प निकाल रहा था कि अकस्मात् राजा भी उसी मार्ग से निकले। उन्होंने पूछा—

"यह क्या है?"

श्रावक ने कहा—"महाराज! नरक की खोज करने वाले किसी पापी ने अकारण ही इन महामुनि पर उपसर्ग किया है।"

कुछ भी प्रतीकार नहीं करने वाले मुनि को उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देख राजा ने मुनि को बार-बार प्रणाम किया और क्षमा याचना की। पुनः यथास्थान चला गया। उस समय से राजा दिगम्बर मुनियों की भक्ति में तत्पर रहने लगा।

राजा के इस धर्म परिवर्तन को देखकर एक परिव्राजक ने कुपित हो उपाय सोचा। पुनः उसने नग्न दिगम्बर मुनि के वेश को बनाकर रानी के साथ संपर्क किया। जब राजा को इस निंद्य कार्य का पता लगा तब वह पूर्व में मंत्री द्वारा कहे गये निर्ग्रन्थ मुनियों के निंदा के वाक्यों का स्मरण कर-करके दिगम्बरों के प्रति पुनः द्वेष भाव को प्राप्त हो गया। पुनः दुष्ट लोगों के द्वारा प्रेरित हुए राजा ने अनेक सेवकों को कहा कि जितने भी दिगम्बर मुनि दिखें सभी को घानी में पेल दो। उस काल में वहाँ पर एक विशाल मुनि संघ आया हुआ था। आचार्य के साथ-साथ ही सभी मुनियों को किन्नरों ने राजाज्ञानुसार घानी में

पेल डाला।[१] सभी मुनि समता भाव से उपसर्ग को सहन कर उत्तम-उत्तम स्वर्ग को प्राप्त हो गये।

उसी समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर वापस आ रहे थे। उन्हें देख किसी दयालु व्यक्ति ने कहा—

"हे दिगम्बर रूपधारी महामुने! तुम इस वेष से इस नगरी में मत जाओ, ठहरो-ठहरो। अन्यथा तुम भी घानी में पेल दिये जाओगे।"

मुनि ने पूछा—

"क्यों, क्या बात है?"

"महामुने! राजा ने कुपित होकर सारे मुनिसंघ को घानी में पिलवा दिया है।"

संघ की मृत्यु के समाचार सुनते ही मुनि स्तब्ध रह गये। उन्हें ऐसी शल्य लगी कि उनकी चेतना अव्यक्त हो गई। उसी क्षण उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वत की शांतिरूपी गुफा से सैकड़ों दुःखों से प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला अर्थात् मुनि के हृदय में क्रोध उत्पन्न होते ही उनके मुख से 'हा' शब्द निकला कि उसी के उच्चारण के साथ

१. अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ घानी पेल जु मारे।
तो भी श्री मुनि समता धारी पूरब कर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव भारी।। (समाधिमरण पाठ)

एकदम अग्नि का पुतला निकला। उससे चारों तरफ का वातावरण हाहाकारमय हो गया, लोग चिल्लाने लगे—

"हाय माता! यह क्या हुआ?"

"हाय हाय! यह ताप तो अत्यन्त दुस्सह है।"

"अरे रे! क्या अग्निदेव कुपित हो गये?"

"हे भगवान् ! रक्षा करो, रक्षा करो।"

देखते ही देखते उस अग्नि ने समस्त देश को भस्मसात् कर दिया। अंतःपुर, देश, नगर, पर्वत, नदियाँ, जंगल और प्राणी कुछ भी शेष नहीं रहे। महान् संवेग से युक्त मुनिराज ने चिरकाल से जो तप संचित कर रक्खा था वह सबका सब क्रोधाग्नि में दग्ध हो गया। पुनः दूसरी वस्तुएं भला कैसी बचतीं? दण्डक नाम के राजा के निमित्त से वह सारा देश दण्डक कहलाता था सो आज भी यह वन दण्डक नाम से प्रसिद्ध है।

"हे रघुनन्दन! यह वही स्थान है जहाँ इस समय आप ठहरे हुए हैं। बहुत समय बीत जाने के बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरता को प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत, नदी, तालाब आदि दिखने लगे हैं। राजा दण्डक उस समय मरकर नरक गया था पुनः वहाँ से निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में भटकता हुआ दुःख उठाता रहा। अब वही दण्डक राजा का जीव इस गिद्ध की पर्याय में आया है। इस समय हम

दोनों को देखकर पाप कर्म की मंदता होने से यह जातिस्मरण को प्राप्त हो गया है।"

"हे रामचन्द्र! देखो, जो राजा परम वैभव से युक्त था आज पाप कर्मों के कारण कैसा हो गया है? सो देखो! संसार में दूसरे के भी ऐसे उदाहरण जब जीवों की शांति के लिए हो जाते हैं तो पुनः यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण हो जावे तो कहना ही क्या है?"

रामचन्द्र से इतना कहकर वे मुनिराज अश्रु गिराते हुए उस गिद्ध पक्षी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

"हे द्विज! अब भयभीत मत होवो, मत रोवो, जो बात जैसी होने वाली होती है उसे अन्यथा कौन कर सकता है? धैर्य करो, निश्चिंत होकर कंपकंपी छोड़ो, सुखी होवो, देखो यह महावन कहाँ? और सीता सहित राम कहाँ? हमारा पड़गाहन कहाँ? और आत्मकल्याण के लिए दुःख का अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ? कर्मों की ऐसी ही चेष्टा है। कर्मों की विचित्रता के कारण ही यह संसार अत्यन्त विचित्र हो रहा है।"

"हे पक्षिराज! तुमने धर्म के प्रसाद से यह एक नूतन शरीर प्राप्त कर लिया है और पाप के क्षीण हो जाने से तुम एक नूतन जन्म को ही प्राप्त हुए हो ऐसा समझो। अब संसार के समस्त दुःखों से छुड़ाने वाला ऐसा सम्यक्त्व

ग्रहण करो, जिनेन्द्रदेव के सिवास अन्य किसी को देव मत समझो, निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों के सिवाय किसी को गुरु मत मानो और जैन आगम के सिवाय किसी के वचनों पर श्रद्धा मत रखो। देखो, मिथ्यात्व के ही निमित्त से तुमने ये भयंकर दुःख भोगे हैं। अतः मिथ्यात्व को महाशत्रु समझकर उससे दूर होवो। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांचों पापों से एकदेश विरक्त होवो क्योंकि सर्वदेश विरति तो पशु पर्याय में संभव ही नहीं है। इस समय इन व्रतों को धारण करो, रात्रि भोजन का त्याग करो और रात-दिन जिनेन्द्र भगवान् को हृदय में धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवास आदि नियमों का आचरण करो और साधुओं की भक्ति में तत्पर होवो।"

मुनिराज के मुख से इस प्रकार के दिव्य उपदेश को सुनकर पक्षी ने अंजलि बांधकर बार-बार सिर हिलाकर तथा मधुर शब्द का उच्चारण कर उपदेश ग्रहण किया तथा मैं व्रत ग्रहण कर रहा हूं, ऐसा संकेत किया। उस समय प्रसन्नचित्त हो सीता बोली—

"अहो! विनीत आत्मा को धारण करने वाला यह हम लोगों का विनोद करने वाला हो गया है।"

पुनः मन्दहास्य करती हुई सीता अपने दोनों हाथों से उस गृद्ध पक्षी का स्पर्श करने लगी।

तदनन्तर वे मुनि बोले—

"रामचन्द्र! अब आप लोगों को इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शांतचित्त हुआ यह बेचारा पक्षी अब कहाँ जायेगा? क्रूर प्राणियों से भरे हुए इस सघन वन में तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की सदा रक्षा करनी चाहिए।"

तब सीता ने कहा—

"हे गुरुदेव! ऐसा ही होगा।" इतना कहने के बाद सबने पुनः पुनः मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज भी सबको आशीर्वाद देकर आकाशमार्ग से विहार कर गये।

उसी समय मदोन्मत्त हाथी को वश में कर उस पर सवार होकर लक्ष्मण वहाँ पर पहुँचे। रत्नों की राशि देखकर अग्रज की ओर देखने लगे। तब राम ने मुनि के आहारदान आदि का सारा वृत्तान्त सुना दिया। लक्ष्मण पहले तो अत्यन्त प्रसन्न हुए पुनः कुछ खेद प्रगट करते हुए बोले-

"अहो! मुझे इन मुनियों के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला।"

जिसे रत्नत्रय की प्राप्ति हुई है ऐसा वह पक्षी राम और सीता के बिना कहीं भी नहीं जाता था। अणुव्रत आश्रम में स्थित सीता भी उसे बार-बार मुनियों के उपदेश का स्मरण दिलाती रहती थी। वह राम, लक्ष्मण के पास ही क्रीड़ा किया करता था। सीता के द्वारा दिये हुए शाकपत्र का भोजन करता था। सीता ने उसके गले में छोटी-छोटी घंटियाँ तथा

पैर में घुंघरू पहना दिये थे और जब कभी उसे ताल दे देकर नृत्य कराया करती थीं। उसके शरीर पर रत्न तथा सुवर्ण की किरणों के सदृश जटाएं सुशोभित हो रही थीं इसलिए रामचन्द्र आदि उसे 'जटायु' इस नाम से बुलाते थे और वह भी उन सबको बहुत ही प्यारा था।

पात्रदान के प्रभाव से सीता सहित राम-लक्ष्मण उस समय रत्न, सुवर्ण आदि महती सम्पत्ति से युक्त हो गये थे। जिसमें चार हाथी जुते थे और विमान के समान सुन्दर ऐसे रथ पर सवार होकर इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए उस वन में सर्वत्र विचरण कर रहे थे।

(८)

सीता हरण

श्रीरामचन्द्र से आज्ञा लेकर दिशाओं की ओर दृष्टि डालते हुए महापराक्रमी लक्ष्मण अकेले ही उस दण्डक वन के समीप घूम रहे हैं। उसी समय वे विनयी पवन के द्वारा लाई गई दिव्य सुगंधि सूंघते हैं। उसे सूँघते ही वे विचार करने लगते हैं कि यह मनोहर गंध किसकी है? आश्चर्य को प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्ग से गंध आ रही थी उसी ओर चल पड़ते हैं। वहाँ जाकर वे वृक्षों से

आच्छादित एक दुर्गम स्थान देखते हैं। उस दुर्गम स्थान में एक बाँसों का स्तम्भ दिखाई पड़ता है। उसके निकट पहुँचते ही उसके अग्र भाग में समस्त वन में प्रकाश की किरणें बिखेरता हुआ एक खड्ग दिखाई देता है।

आश्चर्यचकित हुए लक्ष्मण निःशंक हो वह खड्ग हाथ में ले लेते हैं और तीक्ष्णता की परख के लिए उसी बाँस के बीड़े को काट डालते हैं। खड्गधारी लक्ष्मण को देख वहाँ पर सभी देवता 'आप हमारे स्वामी हैं' ऐसा कहकर नमस्कार के साथ उनकी पूजा करते हैं।

इधर रामचन्द्र कुछ आकुलित हो नेत्र सजल कर जटायु से कहते हैं—

"हे भद्र जटायु! लक्ष्मण आज बड़ी देर कर रहा है, वह कहाँ चला गया है? तू शीघ्र ही आकाश में उड़कर देख।"

इतना सुनते ही जटायु उड़ना चाहता है कि सीता बोलती है-

"हे देव! वह देखो सामने लक्ष्मण आ रहे हैं। वे गन्ध से लिप्त माला और आभूषणों से सुसज्जित हैं तथा हाथ में महा दैदीप्यमान खड्ग भी धारण कर रहे हैं।"

लक्ष्मण को वैसा देख रामचन्द्र हर्ष को रोकने में असमर्थ हो उसी क्षण उठकर लक्ष्मण का गाढ़ आलिंगन कर लेते हैं। लक्ष्मण भी खड्ग संबंधी सर्व वृत्तांत बतला देते हैं। इस तरह

राम, लक्ष्मण और सीता हर्षोल्लास के वातावरण में नाना प्रकार की सुखद कथाएं करते हुए सुखपूर्वक बैठे हुए हैं—

इसी बीच चन्द्रनखा प्रतिदिन के सदृश आज भी वहाँ आती है और बाँस के बीड़े को कटा हुआ देख सोचने लगती है—

ओहो! पुत्र ने यह अच्छा नहीं किया जिस पर बैठकर नियम का अनुष्ठान करके खड्गरत्न को सिद्ध किया था उसी को उसने काट डाला। अथवा अन्य किसी ने कुछ मेरे पुत्र का अमंगल तो नहीं कर दिया है? आशंका से भरी चंद्रनखा इधर-उधर देखने लगती है कि अकस्मात् कुण्डलों से युक्त निष्प्रभ शिर एक तरफ दिखाई पड़ता है उधर दौड़ती है कि पास ही ठूंठ के बीच पड़ा हुआ पुत्र का धड़ भी दिखाई पड़ता है। उसी क्षण मूर्च्छित हो धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ती है पुनः कुछ देर के बाद स्वयं ही होश में आती है। कारण कि उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई थी। उठते ही वह हा-हाकार करते हुए पुत्र के शिर को अपनी गोद में लेकर बड़े जोरों से करुण क्रंदन करने लगती है—

"हाय दैव! तूने यह क्या किया? मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा, यहाँ इसके आगे तीन दिन तूने सहन नहीं किये। हे निष्ठुर दैव! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिसमें तूने मेरे पुत्र को निधि दिखाकर पुनः उसे ही

सहसा नष्ट कर दिया। हे वत्स! तू कहाँ चला गया? सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहता तो शायद चन्द्रहास को भी फीका कर देता। ओह!.....चन्द्रहास खड्ग मेरे भाई के पास है सो जान पड़ता है कि वह अपने विरोधी सूर्यहास को सहन नहीं कर सका। अरे! नियम का पालन करते हुए इस भयंकर वन में तूने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा है पुनः किस दुष्ट ने तुझे मारने को हाथ उठाया है? अच्छा मैं देखती हूँ वह अविचारी पापी कैसे जीवित रह सकेगा?"

इस प्रकार पुत्र के शिर को गोद में लिए बहुत देर तक वह रोती रही। वह बार-बार पुत्र का मुख चूमती है। कुछ क्षण बाद वह शोक छोड़कर उठ पड़ती है। क्रोध के आवेश में यत्र-तत्र भ्रमण करती हुई शत्रु को खोजने लगती है। कुछ दूर पर उसकी नजर इन तीनों पर पड़ती है।.....राम, लक्ष्मण के रूप को देखकर वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह जाती है।....उसका शोक क्रोध एक तरफ रह जाता है उसी क्षण उसके मन में अनुराग रस उत्पन्न हो जाता है। वह कन्या का रूप बनाकर उसके निकट ही में स्थित पून्नाग वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगती है।

रुदन की आवाज सुनकर सीता का हृदय दया से आर्द्र हो उठता है। वह उठकर उसके पास जाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना देती है—

"हे कन्ये! डरो मत, आओ मेरे साथ चलो।"

पुनः उसका हाथ पकड़कर सीता अपने स्थान पर ले आती है और समझाने लगती है। तदनन्तर राम ने पूछा—

"हे कन्ये! जंगली जानवरों से भरे हुए इस निर्जन वन में तू अकेली कौन है? कहाँ से आई है?" उसने कहा—

"हे पुरुषोत्तम! मूर्च्छा आने पर मेरी माँ मर गई उसके शोक से मेरे पिता का प्राणांत हो गया। मैं पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से परम वैराग्य को प्राप्त हुई इस वन में प्रविष्ट हुई हूँ।"

कुछ मेरे पुण्य से "हे सुन्दर! आप लोग मुझे यहाँ मिले हैं सो जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आप ही मुझे स्वीकार करो।"

राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर में एक-दूसरे को देखते हुए चुप रह जाते हैं। कुछ क्षण प्रतीक्षा कर निराश हो दीर्घ निःश्वास छोड़कर वह बोलती है—

"अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" तब राम ने उत्तर दिया—

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

उसके चले जाने के बाद ये तीनों जन आश्चर्यचकित हो हँसने लगते हैं।

शोक से व्याकुल चन्द्रनखा पति खरदूषण के पास पहुँचकर पुत्र मरण की सारी घटना सुना देती है और यह भी बता देती है कि वहाँ पर दो पुत्र एक महिला ऐसे तीन जने

बैठे हुए हैं उन्होंने ही मेरे पुत्र को मार कर खड्ग छीन लिया है और जब मैं पुत्र के मस्तक को गोद में रखे विलाप कर रही थी तब वे आकर मेरा शील भंग करना चाहते थे किन्तु मैं जैसे-तैसे अपने शील की रक्षा कर यहाँ आई हूँ। उसी क्षण खरदूषण विद्या से वहाँ जाकर पुत्र के शिर को देखकर शोक से आक्रांत हो उठता है। वह सोचता है—

"अहो! मैं रावण का बहनोई हूँ, इतना प्रतापशाली हूँ। मेरे पुत्र शंबुक ने सबके मना करने पर सूर्यहास खड्ग के लिए बारह वर्ष तक यहाँ घोर तपश्चर्या की। खड्गरत्न सिद्ध हो गया, वह सात दिन के भीतर-भीतर ग्रहण करने योग्य रहता है अन्यथा सिद्ध करने वाले को ही मार देता है। मेरे पुत्र शंबुक ने क्यों प्रमाद किया? आज चार दिन हो गये थे उसने उसे ग्रहण कर अपना मनोरथ पूर्ण क्यों नहीं किया। हाय! यह खड्गरत्न भी गया और मेरा पुत्ररत्न भी गया।"

जैसे-तैसे शोक को संवृत कर वापस अपने स्थान पर आकर मंत्रणा करके सेना सहित उस दण्डक वन में आ जाते हैं और त्रिखंडाधिपति रावण को भी समाचार भेज दिया जाता है। क्योंकि जिसने खड्गरत्न प्राप्त किया है वह सुख से वश में नहीं किया जा सकेगा, यह अनुमान सहज ही ये लोग लगा लेते हैं।

सीता युद्ध सूचक वादित्रों का भयंकर शब्द सुनकर काँप उठती हैं—

"हे नाथ! यह क्या? यह क्या?" ऐसा कहते हुए पति से लिपट जाती है। 'रामचन्द्र' भी सीता को आश्वासन देते हुए सहसा यह अनुमान लगा लेते हैं कि या तो खड्गरत्न को प्राप्त करने के निमित्त से किसी का कोप है अथवा उस मायावी स्त्री के कथन से कुछ उपद्रव आया हुआ जान पड़ता है। तत्क्षण वे अपने धनुष को संभाल कर खड़े होते हैं। तब लक्ष्मण हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं—

"देव! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता है। आप राजपुत्री की रक्षा कीजिए, मैं शत्रु की ओर जाता हूँ। हाँ, यदि मुझ पर आपत्ति आयेगी तो मैं सिंहनाद करूँगा।"

इतना कहकर लक्ष्मण चल पड़ते हैं। अकेले ही इतनी विशाल सेना के साथ जूझ पड़ते हैं। अगणित विद्याधर आकाश में ही घिरे हुए एक अकेले के साथ युद्ध कर रहे हैं। इधर रावण भी अपने पुष्पक विमान में बैठकर वहाँ आ जाता है। वहाँ ऊपर से ही वह रामचन्द्र के साथ बैठी हुई सीता को देखता है। वह सहसा उस पर आसक्त हो सारे क्रोध और शोक को भूलकर उसे हरण करने के प्रयत्न में अपना उपयोग लगाता है। पुनः वह अपनी अवलोकिनी विद्या के द्वारा यह जान लेता है कि ये अयोध्या के राजपुत्र

राम हैं, यह इनकी पत्नी सीता है, और लक्ष्मण द्वारा सिंहनाद किये जाने पर रामचन्द्र उसकी सहायता के लिए युद्ध स्थल पर जा सकते हैं। बस! फिर क्या था, वह उसी क्षण सिंहनाद कर देता है।

उस सिंहनाद के साथ हे राम! हे राम!! ऐसी ध्वनि सुनने में आती है। रामचन्द्र व्याकुल हो उठते हैं और सीता से कहते हैं—

"हे प्रिये! तुम क्षण भर यहीं ठहरना, डरना नहीं!" और अत्यधिक मालाओं से उसे ढककर जटायु से बोलते हैं—

'हे जटायु! यदि तुम मेरा किंचित् भी उपकार मानते हो तो मित्र की स्त्री की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना।'

पक्षियों के करुण क्रन्दन को देखकर अपशकुन हो रहा जान कर भी रामचन्द्र मोह से भाई की रक्षा हेतु चल पड़ते हैं।

इधर रावण शीघ्र पुष्पक विमान को उतार कर सीता को दोनों भुजाओं से उठाकर उसमें बिठाने लगता है कि अतीव क्रोध से भरकर जटायु पक्षी अपनी चोंच से उसे मारने लगता है। वह आकाश में अधर उड़कर रावण के वक्षस्थल को नोचने लगता है। रावण अपने कर प्रहार से उसे मारकर नीचे गिरा देता है और सीता को लेकर भाग जाता है। सीता अपना अपहरण हुआ जान शोक से व्याकुल

हो अत्यन्त विलाप करने लगती है। रावण उसके अतीव विलाप को देख मन में विरक्त हो सोचने लगता है कि—

"अहो! इसका तो रंचमात्र भी मेरे प्रति आदर नहीं है।.....

क्या करूँ? हो सकता है मेरी सम्पदा देखकर कदाचित् यह प्रसन्न हो सकती है। हाँ.....मैंने केवली भगवान् के पास यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं बलात् उसका उपभोग नहीं करूँगा।' अतः जैसे-तैसे इसे प्रसन्न करने का ही उपाय करना होगा।" ऐसा सोचकर वह अपनी गोद से उतार कर सीता को अपने पास में बिठा लेता है। अपने स्थान पर पहुँचकर अनुनय, विनय व भय दिखाने के बाद भी जब सीता को राम के स्मरण में रोती हुई ही देखता है तब वह उसे हजारों स्त्रियों की सुरक्षा में अपने प्रमद उद्यान में पहुँचा देता है। जब विभीषण आदि को पता चलता है वे सीता से सारा वृत्तांत समझते हैं पुनः रावण को समझाते हैं—

"हे भाई! तुम यह विष की बेल ऐसी परस्त्री को क्यों ले आये हो? इसे आज ही इसके पति के पास पहुँचाओ अन्यथा यह प्राण त्याग कर देगी।" किन्तु रावण किसी की एक भी नहीं मानता है।

(९)

युद्ध के मैदान में रामचन्द्र को प्रविष्ट हुए देख लक्ष्मण बोल उठते हैं—

"हाय देव! बड़े दुःख की बात है आप विघ्नों से व्याप्त इस वन में सीता को अकेली छोड़कर यहाँ किसलिए आ गये हो?"

राम ने कहा-"भाई! मैं तुम्हारा शब्द सुनकर ही यहाँ आया हूँ।"

लक्ष्मण ने कहा-" आप शीघ्र ही चले जाइये, आपने अच्छा नहीं किया।"

अच्छा, तुम परम उत्साह से शत्रुओं को सब प्रकार से जीतो। ऐसा कहकर शंकितचित्त हुए राम अपने स्थान पर पहुँचते हैं और वहाँ सीता को न देखकर—

"हा सीते!" ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गिर जाते हैं। जब स्वयं सचेत होते हैं तब व्याकुलचित्त हुए इधर-उधर खोजने लगते हैं—

"हे देवी! तुम कहाँ गई हो? आओ, आओ, हे प्रिये! यदि हँसी करने के लिए कहीं छिप गई हो तो जल्दी आ जाओ।"

पुनः कुछ ही दूर पर जटायु को मरणासन्न देखकर उसे महामंत्र सुनाकर सन्यास ग्रहण कराते हैं। वह पक्षी मरकर

देव पर्याय को प्राप्त हो जाता है। इधर रामचन्द्र सीता के अपहरण का अनुमान लगाकर और पक्षी के मरण को देखकर पुनः रुदन करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। पुनः सचेत हो विलाप करते हुए वृक्षों और पक्षियों से सीता के बारे में पूछते हुए हा-हाकार करते हैं और शोक के भार से पीड़ित हो पुनः-पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं।

उधर लक्ष्मण युद्ध में विजय प्राप्त कर अपने स्थान पर आते हैं और राम को एक तरफ धरती पर पड़े हुए देखकर घबड़ाते हुए बोलते हैं—

"हे नाथ! उठो और कहो, सीता कहाँ गई हैं?"

राम सहसा उठ बैठते हैं, लक्ष्मण का घाव रहित शरीर देखकर कुछ हर्षित हो उनका आलिंगन करते हैं, पुनः कहते हैं-

"हे भद्र! मैं नहीं जानता कि देवी को किसी ने हर लिया या सिंह ने खा लिया है। मैंने इस वन में बहुत खोजा पर वह दिखी नहीं।"

विषादयुक्त हो लक्ष्मण बोले—

"हे देव! उद्वेग को छोड़ो, जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्य के द्वारा हरी गई है, सो वे कहीं भी क्यों न हों मैं अवश्य ही उनका पता लगाऊँगा।"

इस प्रकार मधुर वचनों से सान्त्वना देकर लक्ष्मण ने

अग्रज का मुख धुलाया। इसी बीच तुरही का उच्च शब्द सुनकर राम ने पूछा—

"भाई! यह शब्द किसका है? क्या कुछ शत्रु शेष रह गये हैं?"

"नहीं, यह शब्द शत्रु का न होकर मित्र का है। प्रभो! सुनिये, भयंकर युद्ध के मध्य एक राजा कुछ सेना लेकर आया और मुझसे कुछ प्रार्थना करने लगा, मैंने शीघ्र ही उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसे आश्वासन देते हुए अपने पीछे खड़ा होने को कहा। पुनः वह प्रणाम कर बोला—

"नाथ! आप मुझे इन दुष्टों को मारने का आदेश दीजिए। मेरी स्वीकृति मिलते ही उसने खरदूषण की सारी सेना में खलबली मचा दी। पुनः मैंने भी आपके प्रसाद से इसी सूर्यहास खड्ग से खरदूषण को मार गिराया और उसे उस खरदूषण के राज्य का स्वामी बना दिया।"

इसी बीच चंद्रोदय विद्याधर का पुत्र विराधित अपनी सेना सहित वहाँ आकर विनय से रामचन्द्र को नमस्कार करके निवेदन करता है—

"प्रभो! चिरकाल बाद आप जैसे महापुरुष हमें प्राप्त हुए हैं सो करने योग्य कार्य के विषय में मुझे आदेश दीजिए।"

तब लक्ष्मण ने सारी घटना सुनाकर कहा—

"सीता के बिना राम शोक के वशीभूत हो यदि प्राण

छोड़ते हैं तो निश्चित ही मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। क्योंकि हे भद्र! तुम निश्चित समझो कि मेरे प्राण इन्हीं के प्राणों के साथ मजबूत बंधे हुए हैं।"

विराधित ने मन में सोचा, "अहो! मैं अपने राज्य को प्राप्त करने हेतु इनकी शरण में आया, परन्तु देखो, सभी जीव कर्मों के आधीन हैं। इन पर तो इस समय महान् संकट आ पड़ा है।" पुनः बोला—

"देव! मैं अवश्य ही सीता की खोज कराऊँगा।" ऐसा कहकर अपने आश्रित हुए तमाम विद्याधरों को उसने दशों दिशाओं में देखने के लिए भेजा। सभी घूम-घूम कर वापस आ गये। तब रामचन्द्र अत्यधिक दुःखी हो विलाप करने लगे। विराधित विद्याधर आदि ने उन्हें समझाते हुए निवेदन किया—

"हे नाथ! आप जैसे महापुरुष को शोक करके शरीर का अनिष्ट करना उचित नहीं है, धैर्य धारण कीजिए और हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। खरदूषण के मरने से सुग्रीव, रावण आदि में भयंकर क्षोभ हुआ होगा सो अब आप सुरक्षित स्थान जो अलंकारपुर नगर है वह हम लोगों की वंश परंपरा से चला आया उत्तम और शत्रु के लिए दुर्गम स्थान है वहीं चलें। वहीं पर रहकर सीता की खोज करायेंगें।"

इतना सुन राम-लक्ष्मण रथ में बैठकर उनके साथ चल पड़े। वहाँ पहुँचकर विराधित तथा राम-लक्ष्मण खरदूषण

के भवन में यथा योग्य निवास करने लगे। वहाँ पर सुन्दर जिन मंदिर में जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का दर्शन कर रामचन्द्र कुछ धैर्य को प्राप्त होते थे। पुनः सीता के शोक में व्याकुल हो उठते थे।

(१०)

राम रावण युद्ध

मेघ के समान दुंदुभि का शब्द सुनकर लक्ष्मण विराधित से पूछते हैं—

"कहो, यह किसका शब्द है?" विराधित कहता है—

"हे देव! वानर वंशियों का स्वामी सुग्रीव आपके पास आया हुआ है यह उसी की सेना का शब्द है।"

इसी वार्तालाप के मध्य सुग्रीव राजभवन में प्रवेश करता है। लक्ष्मण आदि उसका आलिंगन कर अमृततुल्य वाणी से परस्पर वार्तालाप करते हैं तदनन्तर एक वृद्ध सज्जन रामचन्द्र से सुग्रीव का परिचय देते हुए कहते हैं—

"हे नाथ! यह किष्किन्ध नगर का राजा सुग्रीव है। एक समय कोई दुष्ट मायावी विद्याधर इसी जैसा रूप बनाकर इसके अन्तःपुर में घुस आया। उस समय उसकी रानी सुतारा उसे कृत्रिम समझकर भयभीत हो अपने परिजनों से कहती है कि यद्यपि इसका रूपरंग सभी मेरे पति के सदृश है फिर

भी जैसे चिह्न, व्यंजन आदि मेरे पति के हाथ आदि में हैं वैसे इसके नहीं हैं। इसी बीच सत्य सुग्रीव भी वहाँ आ जाता है। वह अपने जैसे रूपधारी को देख गर्जना करके उसे पराजित करना चाहता है कि वह भी गर्जना करने लगता है किन्तु युद्ध में सत्य सुग्रीव ही कहीं न मारा जाय इस कारण युद्ध रोक दिया जाता है।

इस समस्या में मंत्री आदि लोग संदिग्ध होकर मंत्रणा करके यह निर्णय करते हैं कि 'लोक में गोत्र की शुद्धि दुर्लभ है अतः उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है।" इसलिए वे लोग नगर के दक्षिण भाग में कृत्रिम सुग्रीव को और उत्तर भाग में सत्य सुग्रीव को स्थापित कर देते हैं। सात सौ अक्षौहिणी प्रमाण आधी सेना और अंग पुत्र पिता की आशंका से कृत्रिम सुग्रीव के पास चला जाता है और आधी सेना के साथ अंगद पुत्र अपने पिता के पास चला जाता है। सुग्रीव के बड़े भाई बालि ने दीक्षा ले ली थी। उनका पुत्र चन्द्ररश्मि यह आदेश दे देता है कि सही निर्णय होने तक दोनों सुग्रीव में से जो भी सुतारा के भवन की ओर आयेगा वह मेरे द्वारा बाध्य होगा।

इस संकट में पड़े हुए सुग्रीव का संकट हनुमान आदि भी दूर नहीं कर सके हैं अब यह आपकी शरण में आया है सो आप ही इसके दुःख को दूर करने में समर्थ हैं।

इतना सुनकर रामचन्द्र मन में सोचते हैं—

"ओह! यह तो मुझ से भी अधिक दुःखी है, अहो! इसका शत्रु तो प्रत्यक्ष में ही इसे बाधा पहुँचा रहा है।"

पुनः रामचन्द्र और लक्ष्मण विराधित आदि के साथ मंत्रणा करके सुग्रीव को आश्वासन देते हुए कहते हैं-

"भद्र! मैं तुम्हारे शत्रु को मारकर तुम्हारी प्रिया और राज्य को वापस दिला दूँगा। बाद में यदि तुम मेरी प्राणाधिका प्रिया का पता लगा सको तो उत्तम बात है।" सुग्रीव कहता है—

"नाथ! यदि मैं सात दिन के अंदर सीता का पता न लगा दूँ तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।'

राम और सुग्रीव जिनालय में जिनधर्मानुसार शपथ ग्रहण करते हैं कि "हम दोनों परस्पर में द्रोह रहित एक-दूसरे के मित्र हैं।" पुनः महासामंतों से सेवित राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ किष्किधपुर चल देते हैं। वहाँ पर पहुँचकर दोनों सुग्रीव का युद्ध शुरू हो जाता है। एक बार तो राम भी संशय में पड़ जाते हैं कि वास्तव में सुग्रीव कौन है? और मायावी कौन है? युद्ध में सुग्रीव को मायावी सुग्रीव पराजित कर देता है वह मूर्च्छित हो जाता है तब लोग उसे शिविर में ले आते हैं। होश आने पर वह रामचन्द्र से कहता है—

"नाथ! आपने हाथ में आए हुए शत्रु को कैसे छोड़ दिया? ओ हो!! मालूम पड़ता है कि मेरे दुःखों का अंत

अब नहीं होगा।" रामचन्द्र कहते हैं—

"भद्र! कहीं तेरा ही वध न हो जाये इसलिए मैं आज तटस्थ रहा हूँ। चूँकि जिनागम का उच्चारण कर तू मेरा मित्र बना है।"

पुनः द्वितीय दिवस लक्ष्मण वास्तविक सुग्रीव का आलिंगन कर युद्ध में जाने से उसे रोक लेते हैं उधर रामचन्द्र कृत्रिम सुग्रीव का सामना करते हैं उस समय रामचन्द्र को बलभद्र समझ वैताली विद्या उस मायावी के शरीर से निकलकर भाग जाती है और वह अपने असली रूप में दिखने लगता है। सारे विद्याधर चिल्ला उठते हैं—

'अरे, अरे! यह साहसगति नाम का विद्याधर है जो कि माया से सुग्रीव बना हुआ था। इसी बीच रामचन्द्र उसके साथ घोर युद्ध कर अन्त में उसे पृथ्वी का आलिंगन करा देते हैं। साहसगति को मरा हुआ सुनकर सुग्रीव हर्ष से विभोर हो लक्ष्मण सहित राम की पूजा करता है और अपनी सुतारा को तथा राज्य को पाकर कृतकृत्य हो जाता है। रामचन्द्र चन्द्रप्रभ जिनालय में जाकर भगवान की पूजा भक्ति कर वहीं ठहर जाते हैं और विराधित आदि विद्याधर उस चैत्यालय के बाहर ही अपनी सेना ठहरा लेते हैं।

अनंतर सुग्रीव अपनी चंद्रा, हृदयावली आदि तेरह पुत्रियाँ राम को समर्पित करते हैं। वे कन्यायें वीणा वादन, मधुर

गान आदि से राम को सुखी करना चाहती हैं किन्तु रामचन्द्र सीता के स्थान के सिवाय किसी की तरफ आँख उठाकर देखते भी नहीं हैं। यदि कदाचित् किसी से बोलते भी हैं तो सीता समझकर ही बोलते हैं।

एक समय रामचन्द्र उद्विग्न चित्त हो सोच रहे हैं—

"क्या सुग्रीव को भी सीता का पता नहीं लगा? क्या वह मृत्यु को प्राप्त हो गई है या जीवित है? अहो, देखो सुग्रीव अपनी पत्नी में आसक्त हो मेरे दुःख को भूल गया है।.....ओह!!.....अब मुझे वह मेरी प्रिया मिलेगी या नहीं?...." सोचते-सोचते उनकी आँखें सजल हो जाती हैं और शरीर शिथिल हो जाता है। उस समय लक्ष्मण अग्रज के अभिप्राय को समझकर क्षुभितचित्त हो नंगी तलवार हाथ में लेकर सुग्रीव के भवन में पहुँच जाते हैं और बोलते हैं—

"अरे पापी, दुर्बुद्धिधर! मूढ़! जबकि परमेश्वर रामचन्द्र स्त्री दुःख में निमग्न हैं तब तू स्त्री के साथ सुखोपभोग क्यों कर रहा है? अरे दुष्ट! नीच विद्याधर! मैं तुझ भोगासक्त को वहीं पहुँचाए देता हूँ जहाँ के स्वामी ने तेरी आकृति के धारक को पहुँचाया है।"

इस गर्जना को सुनकर घबराया हुआ सुग्रीव लक्ष्मण को नमस्कार करता है और उसकी स्त्रियाँ हाथ में अर्घ ले-लेकर प्रणाम करके लक्ष्मण को शांत करती हैं। लक्ष्मण

सुग्रीव को प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हैं और सुग्रीव पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करके राम के समीप आकर नमस्कार करके अपने सामंतों को व किन्नरों को बुलाकर सर्वत्र भेज देता है और भामंडल को भी समाचार भिजवाकर स्वयं ही वह विमान में बैठकर सीता की खोज के लिए निकल पड़ता है। आकाश में भ्रमण करते हुए सुग्रीव को एक पर्वत पर ध्वजा दिखती है। वहाँ पहुँचकर वह रत्नजटी नाम के विद्याधर से मिलता है और उसे विमान में बिठाकर ले आता है। रत्नजटी राम के पास आकर नमस्कार कर निवेदन करता है—

"प्रभो! आपकी सीता का अपहरण दुष्ट रावण ने किया है। वह पुष्पक विमान में बिठाकर ले जा रहा था और मैं उधर से आ रहा था। सीता के करुण क्रंदन से मैंने परिचय पूछकर रावण से उसे छोड़ देने को कहा। जब वह नहीं माना तब मैंने उसका सामना किया। उस समय उस पापी ने मेरी विद्यायें छीनकर मुझे आकाश से नीचे गिरा दिया।"

सीता का समाचार सुनते ही राम बार-बार उसका आलिंगन कर प्रसन्न होते हैं। पुनः हर्ष-विषाद को प्राप्त हुए राम लोगों से पूछते हैं—

"कहो, लंका यहाँ से कितनी दूर है?"

लोग कहते हैं—

"नाथ! लवणसमुद्र में एक राक्षसद्वीप है उसमें त्रिकूटाचल पर्वत है उसके शिखर पर लंका नगरी स्थित है।"

पुनः ये लोग रावण के पराक्रम का वर्णन करते हुए बार-बार यही कहते हैं कि—

"देव! उस रावण से आपका और हम लोगों का युद्ध सर्वथा विषम है। हम लोग उसे जीतने में सर्वथा असमर्थ हैं।"

तब लक्ष्मण उन सबकी बातों का अनादर कर कहते हैं-

"वह परस्त्रीलंपट महाक्षुद्र नीच है, हम उसे अवश्य ही निर्जीव करेंगें।"

तब वे लोग पुनः कहते हैं—

"हे राजन् ! एक बार अनंतवीर्य केवली ने यह बताया था कि जो कोटि शिला को उठायेगा वही रावण का वधकर्त्ता होगा।"

इतना सुनते ही राम-लक्ष्मण वहाँ चलने को उद्यत हो जाते हैं। वहाँ पहुँचकर ये लोग गंध पुष्प आदि से उस कोटि शिला की अच्छी तरह पूजा करते हैं। सिद्धों को नमस्कार करके लक्ष्मण उस कोटि शिला को अपनी भुजाओं से हिला देते हैं पुनः उसे भुजाओं से ऊपर तक उठा लेते हैं। आकाश से देवतागण पुष्पों की वृष्टि करते हुए धन्य-धन्य शब्द से दिशाओं को मुखरित कर देते हैं और विद्याधरों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता है। अब वे लोग निश्चय कर लेते हैं कि रावण का

शत्रु लक्ष्मण ही होगा। फिर भी आपस में मंत्रणा करते हैं—

युद्ध में न जाने कितने जीवों का संहार होगा अतः पहले दूत भेजकर उसके अभिप्राय को जाना जाये और उसे समझाकर सीता को वापस लाकर राम-लक्ष्मण व रावण की परस्पर में संधि करा दी जाये। इस कार्य के लिए पवनञ्जय के पुत्र हनुमान को उपयुक्त समझकर उन्हें वहाँ बुलाया जाता है और रामचन्द्र उसे अपनी अँगूठी देकर सीता की खबर लाने के लिए उसे तरह-तरह से समझाकर भेज देते हैं।

(११)

हनुमान विमान में बैठे हुए बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते चले जा रहे हैं। प्राकृतिक शोभा को देखते हुए दधिमुख नगर के ऊपर से निकलते हैं। उस नगर के बाहर चारों तरफ के उद्यान की शोभा हनुमान के मन को बरबस अपनी ओर खींच रही है। धीरे-धीरे विमान आगे बढ़ता जा रहा है, कुछ दूर चलकर भंयकर वन दिखता है। वहाँ पर तमाम जंगली पशु विचरण कर रहे हैं, आगे बढ़ते ही देखते हैं कि उस वन में भयंकर अग्नि की ज्वाला अपनी लपटों से मानों आकाश को छूने का ही उपक्रम कर रही है। एकदम घबराते हुए हनुमान तत्क्षण ही दूसरी तरफ दृष्टि डालते हैं तो क्या देखते हैं—

दो महामुनि अपनी भुजाओं को नीचे लटकाये हुए

नासाग्र दृष्टि सौम्यमुद्रा से युक्त कायोत्सर्ग से खड़े हुए हैं। उनसे कुछ दूर ही वह अग्नि मानों उनके दर्शन की अभिलाषा से ही अथवा उनके ध्यान का परीक्षण करने के लिए उधर की ओर बढ़ती आ रही है। वहीं से लगभग पांच कोश की दूरी पर तीन कन्यायें ध्यान मुद्रा में स्थित हैं। वे शुक्ल वस्त्र को धारण किए हुए हैं उनका मनोहर रूप उनके विशेष पुण्य को सूचित कर रहा है।

हनुमान के हृदय में उन महामुनियों के प्रति परम भक्ति-भाव उमड़ पड़ता है और साथ ही वात्सल्य भाव से प्रेरित हो सोचने लगते हैं—

"अहो! सुख-दुख में समभावी ये महामुनि कुछ क्षण में ही इस अग्नि के उपसर्ग से इस नश्वर शरीर को छोड़ने को प्रयत्नशील हैं। इनके लिए जीवन और मरण एक समान है फिर भी मेरा क्या कर्तव्य है?.....क्या मैं इनके उपसर्ग को दूर करके सातिशय पुण्य का भागी बन सकता हूँ? और ये कन्यायें कौन हैं?....जो भी हो'।

इतना सोचते ही हनुमान शीघ्रता से ही समुद्र का जल खींच कर उसे मेघरूप में परिणत कर लेते हैं और उन मेघों को हाथ में लेकर आकाश में ऊँचे जाकर वर्षा शुरू कर देते हैं। देखते ही देखते दावानल अग्नि शांत हो जाती है और हनुमान कृतकृत्य हुए के समान नीचे आकर गुरु के चरणों

में नमस्कार कर पुष्प, अक्षत आदि सामग्री से उनके चरणों की पूजा करना शुरू कर देते हैं।

इसी बीच वे कन्यायें मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देकर वहीं पर आ जाती हैं और गुरु की वंदना करके बैठ जाती हैं पुनः हनुमान से कहती हैं—

'अहोबन्धु! आप जिन शासन के परमभक्त हैं। आज आपने अन्यत्र कहीं जाते हुए जो इन महामुनियों के उपसर्ग का निवारण किया है सो आपका यह धर्मी के प्रति वात्सल्य आपके अपूर्व माहात्म्य को प्रकट कर रहा है।'

तब हनुमान पूछते हैं—

"इस भयंकर निर्जन वन में आप लोग कौन हैं? और यह दावानल कब एवं कैसे प्रज्ज्वलित हुआ था?"

ज्येष्ठ कन्या कहती है—

'भद्र! दधिमुख नगर के राजा गंधर्व की अमरा नाम की रानी से उत्पन्न हुई हम तीनों बहने हैं। मैं चन्द्रलेखा हूँ मेरी यह दूसरी बहन विद्युत्प्रभा है एवं यह तीसरी तरंगमाला है। एक बार अष्टांग निमित्त ज्ञाता महामुनि से हमें यह मालूम हुआ कि जो महापुरुष युद्ध में विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अधिपति साहसगति विद्याधर को मारेगा वही इन तीनों का भर्ता होगा। कितने ही विद्याधर हम तीनों के लिए प्रार्थना कर रहे हैं उनमें से एक अंगारक नाम का विद्याधर है

वह विशेष रूप से संताप को प्राप्त हो रहा था।

साहसगति को मारने वाला कौन होगा? इस बात को समझने की उत्कंठा से हम तीनों 'मनोनुगामिनी' नामक उत्तम-विद्या सिद्ध करने के लिए यहाँ आई थीं। दुष्ट अंगारक ने यह अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी और भाग गया। आज हमें यहाँ बारहवाँ दिन है। जो विद्या छः महीने से भी अधिक दिनों में सिद्ध होने वाली थी वह आज आपके निमित्त से हमें सिद्ध हो गई है और आज इन मुनियों को यहाँ पर आकर ध्यानस्थ हुए आठ दिन हुए हैं। यदि आप उपसर्ग निवारण न करते तो मेरे निमित्त से ये महामुनि भी अग्नि में भस्मसात् हो जाते।

'हे भ्रातः! आपने आज हम तीनों पर व जैन शासन पर महान् उपकार किया है।'

इन बातों के मध्य ही विद्याधर राजा गंधर्व भी अपनी रानी आदि सहित वहाँ आ जाते हैं। पुनः हनुमान साहसगति को मारने वाले रामचन्द्र की सारी घटना उन सबको सुना देते हैं। सुनते ही राजा गन्धर्व व कन्याओं के हर्ष का पार नहीं रहा। हनुमान के कहे अनुसार वे सब किष्किंधपुर पहुँचते हैं। राम के साथ तीनों कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार हो जाता है। राजा गंधर्व राम की आज्ञा में रहते हुए अपने को पुण्यशाली मानते हैं किन्तु रामचन्द्र सीता के

बिना दशों दिशाओं को शून्य सा ही अनुभव करते हैं।

इधर हनुमान वहाँ से चलकर त्रिकूटाचल के सन्मुख पहुँचते हैं। सेना की गति अकस्मात् रुकती हुई देखकर पता लगाते हैं। मायामयी कोट की रचना समझकर अपनी सेना को आकाश में ही रोककर गदा को हाथ में लेकर मायामयी पुतली के मुख में घुस जाते हैं और उसे तीक्ष्ण नखों के द्वारा चीर डालते हैं। उस समय आशालिक विद्या चट-चट शब्द करते हुए पलायमान हो जाती है।

यन्त्रमय कोट को नष्ट होता हुआ देख, उसके रक्षक राजा वज्रमुख सेना सहित आ जाते हैं। भयंकर युद्ध के मध्य श्रीशैल उस वज्रमुख का शिर काटकर नीचे गिरा देते हैं। पिता की मृत्यु से कुपित हुई लंकासुन्दरी हनुमान के साथ घमासान युद्ध करती है। बहुत कुछ समय के बाद युद्ध करते-करते श्रीशैल के मन में उस कन्या के प्रति अनुरागभाव जाग्रत हो जाता है। उसी क्षण वह कन्या भी श्रीशैल के प्रति मुग्ध हो जाती है। तब वह अपने नाम से अंकित एक बाण छोड़ती है। गोद में आये हुए बाण को हाथ में लेकर उसके पत्र को श्रीशैल बाँचते हैं—

'हे नाथ! जो मैं अगणित देवों के द्वारा भी जीती नहीं जा सकती थी सो मैं, इस समय आपके मोहनीय काम बाणों से पराजित हो चुकी हूँ।

इतना पढ़ते ही श्रीशैल अपने रथ से उतरकर आगे बढ़ते हैं और शीघ्र ही उस लंकासुन्दरी को अपने हृदय से लगाकर गाढ़ आलिंगन कर लेते हैं। कुछ एक क्षण लंकासुन्दरी श्रीशैल के स्पर्शजन्य सुख का अनुभव करती है। पुनः उसके नेत्रों से अविरल अश्रु की धारा बह चलती है। पिता की मृत्यु से वह शोक से विह्वल हो जाती है। तब हनुमान समझाते हैं—

'हे सौम्यमुखि! शोक छोड़ो, अपने अश्रुओं को रोको। सनातन क्षत्रिय धर्म की यही रीति है कि राज्य कार्य में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना। तुम्हारे पिता भी वीरगति को प्राप्त हुए हैं। हे प्रिय! यह आर्तध्यान समाप्त करो। युद्ध में किसी के द्वारा किसी का मरण यह तो एक निमित्त मात्र है। वास्तव में जिसकी जैसी होनहार होती है वह होकर ही रहती है।'

अनेक सम्बोधन को प्राप्त कर लंकासुन्दरी शांत हो जाती है। उनकी आज्ञा से आकाश में ही सुन्दर नगर बन जाता है। कुछ समय विश्राम कर हनुमान वहाँ से चलने को उद्यत होते हैं तब लंका सुन्दरी कहती है-

'नाथ! अब रावण का आपके प्रति पहले जैसा सौहार्द नहीं है अतः आप सावधान होकर जाइये।'

हनुमान कहते हैं—

"हे सुमुखि! तुम धैर्य को धारण करो मैं यथायोग्य ही सब कार्य करूँगा।

हनुमान सीता के दर्शन की उत्सुकता को मन में लिए हुए लंका में प्रवेश करते हैं। पहले वे विभीषण के महल में प्रवेश करते हैं। कुशल समाचार के अनन्तर सीता संबंधी चर्चा चलती है। हनुमान कहते हैं—

'अहो! जैसे पर्वत नदियों का मूल है वैसे ही राजा भी सभी मर्यादाओं का मूल है यदि राजा स्वयं अनाचार में प्रवृत्त हो तो प्रजा क्या करेगी?'

विभीषण ने कहा—

'बन्धुवर! मैंने तो बहुत कुछ समझा लिया है। क्या करूँ समझ में कुछ नहीं आता है। आज सीता को आहार छोड़े हुए ग्यारहवां दिन है फिर भी लंकाधिपति को विरति नहीं है। ओह!.....'

विभीषण की बात सुनते ही दया से आर्द्र हो हनुमान प्रमदवन में पहुँचते हैं। नन्दन वन के सदृश उद्यान की शोभा देखते ही बनती है किन्तु हनुमान उस समय फूलों की सुगंधि और मयूरों की नृत्यकला की तरफ दृष्टिपात न करते हुए सीधे वहाँ पहुँचते हैं कि जहाँ रामदेव की सुन्दरी सीता कृश शरीर हुई अपने कपोलों पर हाथ रखकर चिंतित मुद्रा में बैठी हैं। विचार करते हैं—

"ओहो! ऐसा रूप क्या देव अप्सरा में संभव है?...त्रिखंडाधिपति रावण इस रूप सौंदर्य से ही शायद पागल हो रहा है। फिर भी उसे यह तो सोचना ही था कि परस्त्री अग्नि की कणिका के समान है। अहो!.....इस समय यह दुःख रूपी सागर में निमग्न है।'

ऐसा सोचते हुए हनुमान सीता की गोद के वस्त्र पर श्री रामचन्द्र की अँगूठी छोड़ देते हैं। उस मुद्रिका को देखकर सीता सहसा मुस्करा उठती है और उसके सारे शरीर में रोमांच हो जाता है।

सीता को प्रसन्नमना देखकर वहाँ पर खड़ी हुई विद्याधरियाँ रावण तक समाचार पहुँचा देती हैं। मन्दोदरी आकर बोलती हैं—

"हे बाले! आज तूने हम सभी पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है। अब तू शोक रहित हो त्रिखंडाधिपति चक्रवर्ती रावण की सेवा करके अपने यौवन को सार्थक कर।"

तब सीता कुपित होकर कहती है—

"हे विद्याधरि! आज तो मेरे पतिदेव का समाचार मुझे प्राप्त हुआ है इसलिए मैं तुझे प्रसन्न दिख रही हूँ.....। जान पड़ता है कि अब तेरी माँग का सिंदूर जल्दी ही धुलने वाला है।"

इतना सुनते ही सब विद्याधरियाँ एक साथ कोलाहल करके बोलती हैं—

"अरे दुष्टे! ऐसा लगता है कि क्षुधा से पीड़ित हो तुझे वायु रोग हो गया है कि जिससे तू बक रही है।"

उस समय सीता कहती है—

"आज इस समय इस समुद्र के मध्य महान संकट में कष्ट को प्राप्त हुई ऐसी मैं, सो मेरा कौन स्नेही उत्तम बंधु यहाँ आया है?"

उस समय हनुमान तत्क्षण ही सीता के निकट पहुँचकर अंजलि जोड़कर नमस्कार करते हुए कहते हैं—

"हे मातः! मैं श्री रामचन्द्र के द्वारा भेजा गया पवनंजय का पुत्र हनुमान हूँ। हे पतिव्रते! तुम्हारे विरह रूपी सागर में डूबे हुए राम स्वर्ग के सदृश वैभव से युक्त महल में भी रति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं.....।"

इत्यादि वचनों को सुन सीता परमप्रमोद को प्राप्त होती है। पुनः विषाद से खिन्नमना हो बोलती है—

"हे भाई! इस दुःखावस्था में निमग्न आज इस समय मैं तुझे क्या दूँ? तूने मेरा जो आज उपकार किया है....उसके प्रतिफल में मैं....।"

इसी बीच में हनुमान कहते हैं—

"मातः! आपके दर्शनों को प्राप्त कर मैं सब कुछ प्राप्त कर चुका हूँ।"

पुनः सीता पूछती है—

"हे भद्र! तुम यहाँ कैसे आये हो? क्या सच में यह अँगूठी तुम्हें मेरे स्वामी ने दी है अथवा कहीं उनकी अँगुली से गिर कर तुम्हें मिल गई है। हे भाई! सच-सच कहो?"

इतना सुनकर हनुमान लक्ष्मण के सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति से लेकर तब तक के हुए सारे समाचारों को सुना देता है। सीता पतिदेव के सर्व समाचारों को जानकर विश्वास को प्राप्त होती हुई एक क्षण के लिए हर्ष भाव को धारण करती है। पुनः तत्क्षण ही अश्रु से नेत्रों को पूरित कर करुण विलाप करने लगती है।

हनुमान उसे तरह-तरह से सान्त्वना देते हैं पुनः निवेदन करते हैं—

"हे मातः! चूँकि शरीर को धारण करने से ही आप पुनः रामचन्द्र के दर्शन प्राप्त कर सकोगी और अपने प्राणों की रक्षा के साथ-साथ ही उनके प्राणों की रक्षा कर सकोगी। अतः मेरी प्रार्थना स्वीकार करके और अपने पतिदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अब आप भोजन ग्रहण करो। हे देवि! यह समुद्र सहित पृथ्वी रामदेव के शासन में है अतः यहाँ का अन्न छोड़ने के योग्य नहीं है....।"

इत्यादि अनुनय विनय के पश्चात् सीता आहार ग्रहण के लिए स्वीकृति दे देती है। तब हनुमान 'इरा' नाम की कुलपालिक को आहार वस्तु लाने के लिए आदेश देते हैं।

सीता स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो अतिथियों के समागम का चिंतवन करते हुए महामंत्र का स्मरण करती है। पुनः जो यह नियम लिया था कि—

'जब तक पतिदेव का समाचार नहीं मिलेगा, तब तक आहार नहीं लूँगी।' इस नियम को धीरता से समाप्त करती है।

तब जिसके हृदय में भाई का स्नेह उमड़ रहा है ऐसे हनुमान स्वयं आगे होकर 'इरा देवी' के द्वारा लाये गये उत्तम-उत्तम पदार्थों से सीता को पारणा कराते हैं। अनन्तर भोजन के बाद सीता जब कुछ विश्राम कर लेती है तब हनुमान उनके पास पहुँच कर कहते हैं—

'हे देवि! हे पवित्रे! हे गुणभूषणे! अब आप मेरे कंधे पर चढ़ो, मैं अभी समुद्र लांघकर तुम्हें श्री राम के दर्शन कराये देता हूँ।'

तब सीता कहती है—

"भाई! स्वामी की आज्ञा के बिना इस तरह जाना योग्य नहीं है इसलिए प्राणनाथ ही स्वयं यहाँ आकर मेरा उद्धार करेंगे।" पुनः कहती है—

"हे भद्र! अब तू जल्दी कर और जब तक रावण के द्वारा तुझे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक ही तू शीघ्र जाकर मेरे स्वामी को मेरा समाचार विदित करा दे।"

पुनः अपने मस्तक का चूड़ामणि उतार कर हनुमान को देते हुए कहती है—

"इस भूषण को दे करके तुम श्री रामचन्द्र को मेरे विषय में सब कुछ स्पष्ट कहना, भाई! तुम उन्हें यह भी कहना कि आपने जब दण्डक वन में चारण मुनियों को आहार दिया था उस समय गृद्ध पक्षी ने मुनि के चरणोदक से अपने को एक विलक्षण ही बना लिया था.....।"

इत्यादि अनेक स्मृतियों को सीता बताती है कि जिन्हें सुनकर रामचन्द्र को पूर्ण विश्वास हो जाये कि सीता अभी जीवित है और मेरे वियोग से दुःख समुद्र में डूब रही है। अनंतर हनुमान को विदा कर पति की मुद्रिका को अपनी अंगुली में पहनकर इतनी संतुष्ट होती है कि मानों साक्षात् आज पति का समागम ही प्राप्त हुआ है।

हनुमान बार-बार सीता को प्रणाम कर वहाँ से चल देते हैं। पुष्पोद्यान से बाहर निकलते समय रावण की आज्ञा से कुछ किंकर दौड़कर उन्हें घेर लेते हैं। तमाम सेना इकट्ठी हो जाती है। शस्त्रों से सहित योद्धाओं को पराजित करते हुए हनुमान कुछ ही क्षणों में उस उद्यान का सर्वनाश कर देते हैं। बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देते हैं और योद्धाओं को चूर-चूर कर देते हैं। अनन्तर चिरकाल तक युद्ध करने के बाद 'इन्द्रजीत' हनुमान को नागपाश में बाँध लेता है। उस समय यद्यपि हनुमान नागपाश

से छूट कर भाग सकते थे किन्तु फिर भी रावण से वार्तालाप के लिए उत्सुक होते हुए वैसे ही बंधन से बंधे रावण के पास लाये जाते हैं। रावण कहता है—

"अरे रे! दुष्ट! तुझे धिक्कार है। अरे! जिनसे तूने वृद्धि को प्राप्त किया था आज उन्हीं के साथ शत्रु भाव को प्राप्त होता हुआ तू मूढ़ भूमिगोचरियों का दूत बनकर यहाँ मेरे सामने आया है। अरे! मैं तो तेरा मुख भी नहीं देखना चाहता हूँ, तू निर्लज्ज है, कृतघ्नी है, पापी है.....।"

हनुमान कहते हैं—

"बहुत कहने से क्या, हे विद्याधराधिपते! अभी तो तुम सावधान होवो और पतिव्रता सीता को श्रीराम से मिलाओ, उनसे सौहार्दभाव स्थापित करके चिरकाल तक अपने चक्ररत्न का उपभोग करो।"

रावण कुपित हो कहता है—

"बस, बस, रहने दे, अपनी विद्वत्ता को रहने दे, आज मुझे मालूम पड़ रहा है कि तू पवनंजय का पुत्र नहीं है अन्यथा ऐसी चेष्टा नहीं करता।"

उस समय हनुमान भी क्रोध के आवेश में गरजकर कहते हैं—

"रावण! निश्चित ही तेरी मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से होने वाली है ऐसा दिख रहा है। अब तू अपनी कीर्ति पताका को

नष्ट कर अपकीर्ति की ध्वजा को चिरकाल के लिए सारे विश्व के ऊपर फहराने को उद्यत हुआ है। जभी तो परस्त्री में लंपट बन रहा है।"

इत्यादि वार्तालापों के अनन्तर रावण कहता है—

"मंत्रियों! तुम लोग इसे साँकल से बाँधकर धूलि से धूसरित कर घर-घर में घुमाओ और इसके आगे ढोल बजता जाये जोकि सबको सूचित करता जाये कि—

देखो! देखो! आज यह भूमिगोचरियों का दूत बनकर यहाँ आया है और स्वामी की अवज्ञा से ऐसे अपमान को प्राप्त कराया गया है।"

इसी क्रोध से लाल हो हनुमान नागपाश के बंधन को ध्वस्त कर निकल पड़ते हैं। अपने पैरों के आघात से इन्द्रभवन के समान रावण के उस सुवर्णमयी कोट को चूर-चूर कर डालते हैं। पुनः प्रसन्न हुए आकाश मार्ग से चले जाते हैं। उधर सीता भी हनुमान के पराक्रम को सुनती हुई पुष्पांजलि बिखेरकर उनके गमन की मंगलकामना करती हुई कहती हैं—

"हे पुत्र! तेरे समस्त ग्रह मंगलकारी हों, तू विघ्नों को नष्ट कर शीघ्र ही अपने मनोरथ सफल कर।"

"हनुमान कुछ ही समय में श्रीराम के पास पहुँचकर प्रणाम करते हैं-राम सहसा उठ कर उसका गाढ़ आलिंगन कर लेते हैं और प्रसन्न हो पुनः पुनः पूछते हैं—

'हनुमान् ! क्या सच में तुमने मेरी प्रिया देखी है? क्या वह जीवित है?.....क्या वह संकट में भी अपने प्राणों को धारण किए हुए है?....."

हनुमान कहते हैं—

" हे प्रभो! यह चूड़ामणि उन्होंने दिया है, वे केवल आपका ही मात्र ध्यान कर रही हैं। रो-रो कर उन्होंने अपने नेत्र लाल कर लिए हैं। प्रभो! ग्यारहवें दिन आपका समाचार पाकर ही उन्होंने मेरी अतीव प्रार्थना से भोजन ग्रहण किया है।"

अनेक प्रकार से वार्तालाप के बाद रामचन्द्र सभी विद्याधरों के साथ मंत्रणा करके युद्ध के लिए प्रस्थान की तैयारी करने में लग जाते हैं।

(१२)

मगसिर वदी पंचमी के दिन सूर्योदय के समय अनेक विद्याधरों के साथ महाराजा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ प्रयाणकालिक बाजे बजवाकर प्रस्थान कर देते हैं। उस काल में उत्तम-उत्तम शकुनों से उन सबका उत्साह द्विगुणित होता जा रहा है। निर्ग्रंथ मुनिराज सामने आ रहे हैं, आकाश में छत्र फिर रहा है, घोड़ों की गंभीर हिनहिनाहट फैल रही है, घंटों की मधुर ध्वनि हो रही है एवं दही से भरा हुआ कलश सामने आ रहा है। विद्याधरों के प्रमुख राजा

सुग्रीव, हनुमान, शल्य, दुर्मषण, नल, नील आदि अपनी-अपनी सेनाओं के साथ चल रहे हैं। निमिषमात्र में ये सब वेलन्धर पर्वत से आगे बढ़ते हुए हंसद्वीप में पहुँच जाते हैं और भामंडल की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ ठहर जाते हैं।

शत्रु की सेना को निकट आती हुई सुनकर अर्धचक्री रावण भी मंत्रणा करके युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं। उस समय विभीषण आकर कहते हैं—

"हे प्रभो! आपकी कीर्ति कुन्द पुष्प के समान उज्जवल है। अतः हे परमेश्वर! परस्त्री के निमित्त इस कीर्ति को मलिन मत कीजिए। हे स्वामिन् ! श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो आप उनका सम्मान कर सीता को उन्हें सौंप दीजिए।"

पिता के अभिप्राय को जानने वाला इन्द्रजीत विभीषण को तर्जित कर कहता है—

"हे भद्र! तुमसे किसने पूछा है? तुम्हें यहाँ इस समय बकवास करने का क्या अधिकार है? तुम कायर हो, चुपचाप अपने घर में बैठो।"

बीच में ही बात काटकर विभीषण कहता है—

"अरे बालक! तू रावण का नामधारी पुत्र है किन्तु वास्तव में शत्रु है। अरे मूढ़! जब तक लक्ष्मण आकर इस लंका नगरी को ध्वस्त नहीं करता है और रावण को धराशायी नहीं करता है तब तक तू पिता के लिए हितकर उपाय सोच...."

इत्यादि वार्तालापों के प्रसंग में रावण क्रोध में लाल होकर उठकर खड़ा हो जाता है और म्यान से तलवार निकाल लेता है। इधर विभीषण भी वज्रमयी खंभा उखाड़कर सामने हो जाता है। युद्ध के लिए उद्यत देख मंत्रीगण शीघ्र ही इन दोनों भाइयों को रोक लेते हैं और जैसे-तैसे शांत करने की कोशिश करते हैं। पुनः आवेश में भरा हुआ रावण कहता है—

"इस दुष्ट विभीषण को यहाँ से शीघ्र ही निकाल दिया जाये। मेरे नगर में इसके रहने से भला क्या लाभ है? यहाँ रहते हुए यदि इसको मैं मृत्यु को प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ।"

तब विभीषण कहता है—

"क्या मैं रत्नश्रवा का पुत्र नहीं हूँ? मैं भी इस नगरी में अब एक क्षण नहीं रहना चाहता हूँ। ओह!....जहाँ राजा ही परस्त्रीलंपट हो वहाँ रहना क्या उचित है?"

इतना कहकर वे वहाँ से चल पड़ते हैं और हंसद्वीप में पहुँचकर अपनी कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी प्रमाण सेना वहाँ ठहरा देते हैं और स्वयं रामचन्द्र के दर्शन हेतु पहुँचते हैं।

रामचन्द्र के यहाँ जब यह समाचार पहुँचता है तब सभी लोग काँप उठते हैं। लक्ष्मण अपनी दृष्टि सूर्यहास खड्ग की ओर डालते हैं तो श्रीराम वज्रावर्त धनुष का स्पर्श करते

हैं। इसी बीच विभीषण द्वारा भेजा हुआ द्वारपाल श्रीराम के पास पहुँचकर दोनों भाई के बीच हुए विवाद को स्पष्ट कर देता है पुनः निवेदन करता है—

"हे नाथ! विभीषण आपकी शरण में आया है अतः आप उसे आश्रय दीजिए।"

दूत के मधुर वाक्यों को सुनकर रामचन्द्र कुछ क्षण के लिए उसे अन्यत्र बिठाकर आप मंत्रियों व हनुमान आदि विश्वस्त जनों के साथ मंत्रणा करते हैं-मतिकांत मंत्री कहता है-

"हो सकता है, रावण ने इसे छल से भेजा हो, क्योंकि राजाओं की कूटनीति विचित्र ही होती है।"

तब मतिसागर मंत्री कहता है—

"मैंने अनेक बार यह बात सुनी है कि विभीषण सदैव धर्म का ही पक्ष लेता है। अतः भाई-भाई में विरोध हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।"

इत्यादि मंत्रणा के बाद रामचन्द्र विभीषण को अन्दर आने की आज्ञा दे देते हैं। विभीषण निकट आकर हाथ जोड़कर रामचन्द्र को प्रणाम करते हुए कहते हैं—

"हे प्रभो! मेरा यही निश्चय है कि इस जन्म में मेरे स्वामी आप हैं और परजन्म में श्री जिनेन्द्रदेव।"

जब विभीषण निश्छलता की शपथ ग्रहण कर लेते हैं तब रामचन्द्र कहते हैं—

"हे विभीषण! मैं निःसंदेह तुम्हें लंका का अधिपति बनाऊँगा।"

इन सब शुभ वातावरण के मध्य ही भामंडल भी अपनी विशाल सेना सहित वहाँ आ जाते हैं और सब मिलकर लंका के निकट पहुँच जाते हैं।

वहाँ पर बीस योजन प्रमाण भूमि में युद्धस्थल निर्धारित किया जाता है। उधर से रावण भी युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। मारीचि, सिंहजवन, स्वयंभू आदि अनेक विद्याधर अधिपति चल पड़ते हैं। उस समय अपशकुन होने लगते हैं। पक्षी पंख फैलाकर फड़फड़ाने लगते हैं। महा भयंकर शब्द होने लगता है। अनेक अपशकुनों को देखकर मंदोदरी रावण को बहुत कुछ समझाती है किन्तु वह दुराग्रही अपने हठ को नहीं छोड़ता है। उस समय लंका नगरी से सब मिलकर साढ़े चार करोड़ कुमार युद्ध के लिए बाहर निकल पड़ते हैं।

युद्ध प्रारंभ हो जाता है उधर इन्द्रजीत, मेघवाहन, कुम्भकर्ण, मय विद्याधर आदि प्रमुख हैं तो इधर सुग्रीव, हनुमान, भामंडल, विभीषण आदि प्रमुख हैं। इन लोगों में दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार चल रहे हैं। इन्द्रजीत वरुण अस्त्र छोड़कर सर्वदिशाओं को मेघ समूह से व्याप्त कर देता है तो सुग्रीव पवन बाण चलाकर मेघ को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। मेघवाहन आग्नेयबाण से अग्नि प्रज्जवलित करता है तो

हनुमान वरुण अस्त्र से उसे बुझा देते हैं। कई दिनों तक भयंकर युद्ध के चलने से असंख्य प्राणियों का संहार हो जाता है। इसी मध्य विभीषण देखते हैं कि मेघवाहन और इन्द्रजीत ने सुग्रीव और भामंडल को नागपाश से वेष्टित कर लिया है। वे निश्चेष्ट पड़े हैं। उस समय की दयनीय दशा को देखकर लक्ष्मण श्रीराम से कहते हैं—

"हे नाथ! हे विद्याधरों के स्वामी! सुग्रीव और भामंडल जैसे महाशक्तिशाली विद्याधर भी रावण के पुत्रों द्वारा जहाँ नागपाश से बाँध लिए गये हैं तब हमारे और आपके द्वारा क्या रावण जीता जा सकता है?"

इतना सुनते ही राम कुछ स्मरण करते हुए कहते हैं—

"भाई! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग दूर करने पर हम लोगों को जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो.....।"

उसी समय राम के स्मरण मात्र से महालोचन नामधारी गरुड़ेन्द्र का आसन कंपायमान हो जाता है। वह अवधिज्ञान से सर्व वृत्तान्त समझकर चिंतावेग नाम के देव को वहाँ भेजता है। देव उनके समक्ष उपस्थित होकर विनयपूर्वक सर्व संदेश सुनाकर श्री राम के लिए सिंहवाहिनी एवं लक्ष्मण को गरुडवाहिनी विद्या प्रदान करता है। पुनः वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत शस्त्र देकर

राम के लिए छत्र, चामर आदि विभूति, अनेक विद्या रत्न और हल तथा मूसल नामक शस्त्र देता है एवं लक्ष्मण के लिए विद्युत्वक्त्र नाम की गदा प्रदान करता है। दोनों भाई इन महान् दिव्य अस्त्र-शस्त्र आदि को प्राप्त करके उस देव का सन्मान करके उसे विदा कर देते हैं पुनः आप दोनों मिलकर जिनेन्द्रदेव की महापूजा करते हैं।

अनन्तर युद्धस्थल में पहुँचकर गरुड़वाहिनी विद्या के प्रयोग से भामंडल आदि को नागपाश बंधन से मुक्त कर देते हैं। कुछ क्षण बाद सुग्रीव आदि विद्याधर विस्मययुक्त हो राम लक्ष्मण से पूछते हैं-

"हे नाथ! जो विपत्ति के समय कभी भी देखने में नहीं आई थीं ऐसी ये अद्भुत विभूतियाँ आज आपके पास कहाँ से प्राप्त हुई हैं। ये दिव्यवाहन, दिव्यास्त्र, छत्र, चामर, ध्वजाएं और विविध रत्न आपको कहाँ से मिले हैं?"

श्रीराम कहते हैं—

"हे बंधु! यह सर्व विभूति गुरुभक्ति के प्रसाद रूप में हमें गरुड़ेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुई है।"

इतना कहकर वे देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग निवारण से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होना अनन्तर गरुड़ेन्द्र द्वारा संतुष्ट होकर वर माँगने की प्रेरणा करना इत्यादि समाचार सुना देते हैं। तब सभी लोग गुरुभक्ति और जिनेन्द्रभक्ति के

माहात्म्य की चर्चा करते हुए राम-लक्ष्मण की अतिशय प्रशंसा करते हैं और उनकी सब प्रकार से पूजा करते हैं।

पुनरपि युद्ध प्रारंभ हो जाता है। कभी रावण की सेना पराजित होती है तो कभी वानरवंशियों[१] की सेना परास्त हुई दिखने लगती है। किसी समय भामण्डल, लक्ष्मण आदि भानुकर्ण और इन्द्रजित को नागपाश से वेष्ठित करके अपने रथ में उन्हें डाल देते हैं। इस घटना से कुपित हो रावण विभीषण को ललकारता है और शक्ति नामक शस्त्र को उठाता है। इसी बीच विभीषण को जैसे-तैसे अलग कर लक्ष्मण मध्य में आ जाते हैं। वह रावण उसी पर शक्ति का प्रहार कर देते हैं। बस, देखते ही देखते लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वीतल पर गिर जाते हैं। उन्हें ऐसा देख श्रीराम तीव्र शोक को रोककर रावण से भिड़ जाते हैं। यद्यपि राम छह बार रावण को धनुष रहित और रथरहित कर देते हैं तथापि उसे पराजित नहीं कर पाते हैं तब वे आश्चर्यचकित हो कहते हैं—

"जब तू इस तरह भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है तब तू अल्पायुष्क नहीं यह निश्चित है। ओह! पूर्व पुण्य तेरी रक्षा कर रहा है। हे विद्याधर राज! सुन! मैं तुझसे कुछ कहता हूँ। जिस मेरे प्राण प्यारे भाई को तूने घायल किया है वह मरने के

१. सुग्रीव आदि विद्याधर की ध्वजाओं में वानर का चिन्ह होने से वे वानरवंशी कहलाते थे।

सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो मैं उसका मुख देख लूँ?"

तब प्रसन्न हो रावण कहता है—

'एवमस्तु' और लंका की ओर चला जाता है। उस दिन युद्ध विराम ले लेता है।

(१३)

उसी युद्ध भूमि में चारों तरफ से सफाई करके विद्याधर लोग तम्बू लगाकर शिविर बना देते हैं। पहले गोपुर के दरवाजे पर राजा नल, दूसरे पर नील, तीसरे पर विभीषण, चौथे पर कुमुद, पाँचवें पर सुषेण, छठे पर सुग्रीव और सातवें द्वार पर स्वयं भामंडल हाथ में नंगी तलवार लेकर सुरक्षा में खड़े हो जाते हैं।

महाराज राम वहाँ आकर भाई के शोक में विह्वल हो मूर्च्छित हो जाते हैं। अनेक उपचारों से होश को प्राप्त होकर वे करुण विलाप करने लगते हैं-

"हे भाई! तू कर्मयोग से इस दुर्लंघ्य सागर को भी उल्लंघ कर यहाँ आया और अब इस दुरावस्था को कैसे प्राप्त हो गया? हाय भाई! मैं तेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ अब जल्दी उठ और मेरे से वार्तालाप कर। ओह!....अब तुझे सीता से भी कुछ प्रयोजन नहीं है। अरे....तू सुख में दुःख में सदैव साथ देता रहा है। तेरे बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगा।....."

राम इधर-उधर देखकर कहते हैं—

"सुग्रीव! भामण्डल! अब तुम लोग अपने-अपने स्थान जाओ। ओह! विभीषण! मैं तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं कर सका सो मुझे बहुत ही दुःख है। ओह!.....अब आप लोग चिता प्रज्ज्वलित करो मैं अपने प्यारे भाई के साथ उसी में बैठकर परलोक प्रयाण करूँगा। अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।"

इतना कहते हुए श्रीराम लक्ष्मण का आलिंगन करने को आगे बढ़ते हैं कि मध्य में ही जाम्बूनद राजा उन्हें रोक लेते हैं—

"नाथ! सावधान होइए, ऐसा प्रमाद उचित नहीं है ये दिव्य अस्त्र हैं। देव! आप धैर्य धारण करो, विलाप करना यह इसका प्रतीकार नहीं है। आपका भाई नारायण है इसका असमय में मरण नहीं हो सकता। आप शांति धारण करो।"

अन्य विद्याधर कहते हैं—

"अहो! सूर्योदय के पहले-पहले यदि इस शक्ति का कुछ उपाय सूझ गया तो ठीक अन्यथा इनका मरण निश्चित है।"

सभी विद्याधर मंत्रणा में लगे हुए हैं और दुर्दिन के समान अश्रुवर्षा कर रहे हैं। उधर दरवाजे पर एक अपरिचित व्यक्ति आता है और अन्दर घुसना चाहता है। तब भामंडल पूछते हैं—

"तू कौन है? कहाँ से आया है? और किसलिए अन्दर जाना चाहता है?"

वह कहता है—

"मैं राम का दर्शन करना चाहता हूँ, यदि आप लक्ष्मण को जीवित देखना चाहते हो तो मुझे शीघ्र ही अन्दर ले चलो।"

भामण्डल अपने स्थान पर अन्य विद्याधर को बिठाकर आप उसे साथ लेकर अन्दर पहुँचते हैं। वह राम को नमस्कार कर कहता है—

"प्रभो! आपके भाई जीवित हैं, आप मेरी प्रार्थना सुनिए।"

सभी एक स्वर से बोल उठते हैं—

"कहिए, जल्दी कहिए।"

"मैं देवगीतपुर का रहने वाला चन्द्रप्रतिम विद्याधर हूँ। एक बार शत्रु द्वारा शक्ति शस्त्र से घायल होकर मैं अयोध्या के उद्यान में गिरा था सो भरत महाराज ने मुझ पर चन्दन मिश्रित दिव्य जल छिड़क कर मुझे जीवन दान दिया था, उसी जल से ये लक्ष्मण भी जीवित होंगे, आप उस जल को शीघ्र ही यहाँ मँगाइये। राजा द्रोणमेघ की कन्या विशल्या के स्नान का वह जल स्वर्ग की दिव्य शक्ति और सर्वरोग को नष्ट करने में समर्थ है।"

इतना सुनते ही हनुमान तथा भामंडल रामचन्द्र की आज्ञा लेकर विमान से रात्रि में ही वहाँ पहुँचते हैं। भरत इस घटना को विदित कर मूर्च्छित हो जाते हैं उन्हें सचेत कर वे लोग उस जल की याचना करते हैं। तब भरत शीघ्र ही

विश्वस्त लोगों को राजा द्रोणमेघ के पास भेज देते हैं साथ में माता कैकेयी भी जाती हैं। राजा द्रोणमेघ को सारी घटना मालूम होते ही वे कहते हैं—

"ठीक है, स्वामी भरत की आज्ञा के अनुसार मेरी पुत्री विशल्या वहाँ स्वयं जायेगी। चूँकि वह लक्ष्मण की ही वल्लभा होगी ऐसा महामुनि ने बताया है।"

भामण्डल स्वयं उस कन्या को अपने विमान में बैठाते हैं और चलने को उद्यत होते हैं। उस समय उस विशल्या के साथ एक हजार राजपुत्रियाँ भी भेजी जाती हैं। ये लोग तत्काल युद्धभूमि में पहुँच जाते हैं। वहाँ विशल्या का अर्घ्य आदि से यथायोग्य सन्मान कर उसे लक्ष्मण के पास ले जाया जाता है।

जैसे-जैसे वह कन्या पास पहुँचती जाती है वैसे-वैसे ही लक्ष्मण की हालत सुधरती जाती है। जब वह निकट पहुँचती है कि 'शक्ति' नाम की विद्या लक्ष्मण के वक्षस्थल से निकलकर भागने लगती है। हनुमान बीच में ही पकड़ कर उससे पूछते हैं—

"तू कौन है?"

वह कहती है—

"हनुमन् ! कैलाशपर्वत पर जब रावण ने अपने हाथ की नसों को खींचकर उसकी वीणा बनाकर भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति की थी उस समय धरणेंद्र ने प्रसन्न हो रावण के

लिए मुझे 'अमोघ विजया' नाम की विद्या दी थी। इस विशल्या के सिवाय इस संसार में आज किसी में यह शक्ति नहीं है कि जो मेरा पराभव कर सके।"

"ऐसा क्यों?" हनुमान पूछते हैं, तब वह कहती है—

"विशल्या ने पूर्वभव में महा घनघोर वन में तीन हजार वर्ष तक घोरातिघोर तपश्चरण किया है। जिसके फलस्वरूप आज उसे यह शक्ति प्राप्त हुई है जिसके स्नान के जल से ही संपूर्ण रोग और संकट दूर हो जाते हैं। उसके सम्मुख मैं भी नहीं ठहर सकती हूँ अतः अब आप मुझे जाने दो।"

हनुमान उसे छोड़ देते हैं। इधर चन्दन के द्रव को लेकर विशल्या श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण के शरीर में विलेपन करती है और उनकी आज्ञा से ही अन्य कन्यायें भी उस विशल्या के हाथ से स्पर्शित चन्दन को अन्य विद्याधरों को लगाती हैं। वह चन्दन इन्द्रजीत आदि के पास भी भेजा जाता है।

इधर जब लक्ष्मण सोये हुए से प्रतीत होते हैं तब बांसुरी की मधुर ध्वनि से उन्हें उठाया जाता है। उठते हुए लक्ष्मण कहते हैं—

"वह रावण कहाँ गया? कहाँ गया?"

कुछ-कुछ मुस्कराते हुए राम उन्हें अपनी बाहों में भर लेते हैं और कहते हैं—

"भाई! रावण तो तुम्हें शक्ति द्वारा आहत कर कृतकृत्य होता हुआ अपने कटक में चला गया है और तुम इस कन्या के प्रभाव से आज पुनर्जन्म को प्राप्त हुए हो।"

लक्ष्मण सारा वृत्तांत श्रवण करते हुए आश्चर्य व स्नेहपूर्ण दृष्टि से विशल्या की तरफ देखते हैं। उसी समय मंगलाचार में निपुण स्त्रियाँ कहती हैं-"स्वामिन्! हम सब लोग अब आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं।"

लक्ष्मण मुस्कुराते हुए कहते हैं—

"जहाँ प्राणों का संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्र में यह विवाह कैसा?"

"हे नाथ! इस कन्या के द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है तथा आपके पुण्य के प्रभाव से समस्त विघ्न शांत हो चुके हैं। अतः अब आप इसके साथ पाणिग्रहण विधि को स्वीकार करके हम लोगों के मनोरथ सफल कीजिए।"

राम की आज्ञा से लक्ष्मण स्वीकृति दे देते हैं और वहीं युद्धस्थल में बड़े ही वैभव के साथ इन दोनों की विवाह विधि सम्पन्न की जाती है।

इधर इस समाचार से रावण के यहाँ अतीव क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। अनेक सामंत और मंत्रीगण तरह-तरह से रावण को समझाते हैं और जैसे-तैसे एक दूत राम के पास भेजने का निर्णय लेते हैं। दूत आकर राम से निवेदन करता है—

"हे पद्म! त्रिखंडाधिपति रावण का कहना है कि युद्ध में अनेक महापुरुषों के संहार से कोई लाभ नहीं है। आपको वे लंका का आधा भाग पर्यंत राज्य देकर संतुष्ट करते हैं किन्तु आप उनके भाई और पुत्रों को भेजो तथा सीता देना स्वीकृत करो।"

तब राम कहते हैं—

"हे भाई! तू रावण से कह दे कि मैं अभी ही उनके भाई एवं पुत्रों को भेजे देता हूँ किन्तु वह मेरी सीता मुझे वापस कर दे। मैं सीता के साथ वन में रहकर ही संतुष्ट हूँ मुझे राज्य की इच्छा नहीं है।"

इतना सुनकर दूत सीता को भेजने के बारे में उत्तर प्रत्युत्तर शुरू कर देता है। भामंडल आदि क्षुभित हो उसे अपमानित करके निकाल देते हैं। तब रावण मंत्रियों के साथ मंत्रणा करके बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने हेतु श्री शांतिनाथ जिनालय में जाकर विधिवत् अनुष्ठान कर लेता है। मंदोदरी घोषणा कर देती है कि इस आष्टाह्निक महापर्व में रावण के अनुष्ठान तक सब लोग नियम अनुष्ठान करते रहें। युद्ध का विराम हो जाता है।

भामंडल आदि यह समाचार ज्ञात कर चिंतित हो उठते हैं और श्रीराम के पास आकर निवेदन करते हैं—

"प्रभो! रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यह

चौबीस दिन में सिद्धि को प्राप्त होती है। इसके सिद्ध हो जाने पर रावण इन्द्रों द्वारा भी जीता नहीं जा सकता पुनः हम जैसे क्षुद्र पुरुषों की तो बात ही क्या? अतः इस अवसर पर उसे क्षुभित किया जाये कि जिससे वह विद्या सिद्ध न कर सके।"

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र कहते हैं—

"जो नियम लेकर जिनमंदिर में बैठा है उस पर ऐसा कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है? भाई! हम उच्चकुलीन क्षत्रियों की यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है।"

सब लोग अपना सा मुंह लेकर चले जाते हैं और आपस में मंत्रणा करते हैं कि—

"हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं ये अधर्म में प्रवृत्ति नहीं करेंगे। अतः चुपचाप अपने-अपने कुमारों को इस कार्य में लगा देना चाहिए।"

सुभूषण आदि कुमार आठ दिन तक तो विचार-विमर्श में समय यापन कर देते हैं, पूर्णिमा के दिन लम्बे-चौड़े वज्रमय किवाड़ तोड़ कर लंका में घुस जाते हैं और उपद्रव करना शुरू कर देते हैं। तब शांतिनाथ जिनालय के शासनदेव बाहर निकल कर वानर सेना पर झपटते हैं यह देखकर इस पक्ष के रक्षक देव भी अपने शिविर से निकल कर परस्पर में युद्ध करने लगते हैं। तब पूर्णभद्र और मणिभद्र यक्षेन्द्र अपनी विक्रिया से इन सबको परास्त कर श्रीराम के पास उलाहना

लेकर पहुँचते हैं और कहते हैं—

"हे महानुभाव! जबकि रावण सम्यक्त्व की भावना से सहित है, जिनेन्द्रदेव के चरणों का सेवक है और इस समय शांतचित्त है तो पुनः क्या इन लोगों को यह उपद्रव करना उचित है?

उस समय उसके क्रोध को देखकर प्रायः विभीषण आदि सभी विद्याधर भयभीत हो जाते हैं किन्तु लक्ष्मण ओजपूर्ण वचन कहते हैं—

"हे यक्षराज! जबकि उसने हमारे स्वामी की प्राणप्रिया का हरण कर कितना घोर अनर्थ किया है और इस विद्या को सिद्ध कर युद्ध में न जाने कितने जीवों का संहार करेगा तब भला तुम उस पर दया क्यों कर रहे हो.....?"

इधर सुग्रीव आदि भी उन यक्षों को अर्घ्य समर्पण कर निवेदन करते हैं—

"हे यक्षराज! क्रोध छोड़िये और समभाव से देखिये कि हमारी सेना में और लंका की समुद्र सदृश सेना में कितना अन्तर है? फिर भी रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। अहो! इस स्थिति में हम लोगों की विजय अथवा धर्म की विजय कैसे होगी?"

इतना सुनकर वे दोनों यक्षेंद्र लज्जित हो जाते हैं पुनः सबसे वार्तालाप करते हुए कहते हैं—

"हे सत्पुरुषों! लंका में जीर्णतृण को भी पीड़ा मत पहुँचाओ और रावण के शरीर की भी कुशलता रखते हुए भले ही उसे क्षुभित करने का प्रयत्न करो कि जिससे वह विद्या न सिद्ध कर सके।"

तत्पश्चात् राम के गुणों की चर्चा करते हुए वे यक्षेंद्र चले जाते हैं और ये लोग रावण को क्षुभित करने के अनेक उपाय करते हैं, कभी उसकी माला तोड़ डालते हैं तो कभी स्त्रियों को उसके सामने कष्ट देते हैं। एक कुमार मंदोदरी को घसीट कर लाकर अनेक त्रास देने लगता है वह विलाप करने लगती है किन्तु रावण ध्यान मग्न है। उसी समय बहुरूपिणी विद्या देवता आकर उपस्थित हो जाती है और कहती है—

"हे स्वामी! मैं सिद्ध हो गई हूँ आप आज्ञा दीजिए। प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधर को छोड़ कर मैं समस्त लोक को आपके अधीन कर सकती हूँ।"

विद्या सिद्ध होते ही अंग-अंगद आदि कुमार वहाँ से पलायन कर जाते हैं और रावण मंदिर की प्रदक्षिणा देकर अपने स्थान पर आ जाता है। विह्वल हुई मंदोदरी आदि रानियों को सान्त्वना देता है। अनंतर सीता को रिझाने के लिए उद्यान में पहुँचकर सीता को अपना वैभव, बल आदि दिखाकर कहता है—

"हे सुन्दरी! मैं अपने सत्यव्रत का पालन करते हुए ही तुम्हारे प्रसाद की प्रतीक्षा कर रहा हूँ किन्तु बलपूर्वक मैं तुम्हारा उपभोग नहीं कर रहा हूँ। अब तुम राम की आशा छोड़ो, वह मेरे बाणों से मरने वाला ही है। अब तुम मुझ पर प्रसन्न होवो और मेरे साथ मेरु कुलाचल आदि में विहार करते हुए सर्वोत्तम सुखों का अनुभव करो।"

अश्रुओं से मुँह को धोती हुई सीता कहती है—

"हे दशानन! यदि तुम्हारी मेरे प्रति किंचित् भी सद्भावना है तो राम को मारने के पहले उन्हें मेरा एक समाचार कह देना कि हे राम! जनकनंदिनी कहला रही है कि मैंने जो अभी तक प्राण नहीं छोड़े थे सो केवल आपके दर्शन की उत्कंठा से ही नहीं छोड़े थे.....।"

इतना कहते हुए वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाती है। तब वैसी स्थिति में रावण अतीव दुःखी हो विचार करता है—

"अहो! इन दोनों का यह कभी भी नहीं छुटने वाला निकाचित स्नेह है। ओह! मुझे बार-बार धिक्कार है, मैंने यह क्या किया? इस प्रेमयुक्त दम्पत्ति का विछोह क्यों करा दिया? हाय! परस्त्री हरण के अपयश से मलिन हुआ मैं किस गति में जाऊँगा? क्या करूँ?....मैं विचित्र ही धर्म संकट में पड़ गया हूँ।"

कुछ क्षण बाद सोचता है—

"ठीक है, अब तो युद्ध में करुणा करना विरुद्ध है

अतः मैं युद्ध में रामचन्द्र को जीवित ही पकड़ लूँगा, पुनः वैभव के साथ उनकी सीता उन्हें सौंप दूँगा।"

इत्यादि विचार करते हुए वह अपने स्थान पर पहुँचता है। पुनः इन्द्रजित, मेघनाद और कुम्भकर्ण को शत्रु के यहाँ बँधा हुआ स्मरण कर व्याकुल हो उठता है। अनेक अपशकुन होते हुए भी वह सब निमित्तज्ञानियों की उपेक्षा कर पुनः युद्ध के लिए निकल पड़ता है। पूर्ववत् युद्ध प्रारंभ हो जाता है, दोनों पक्ष में हार का नाम नहीं है। रावण का एक शिर कटते ही हजारों शिर बन जाते हैं, हजारों भुजाओं से एक साथ हजारों बाण छोड़ रहा है इस तरह वीर रावण और लक्ष्मण को युद्ध करते हुए दस दिन व्यतीत हो जाते हैं। आकाश मार्ग में स्थित चन्द्रवर्धन विद्याधर की आठ कन्यायें लक्ष्मण के युद्ध को देख रही हैं। आपस में उनका परिचय पूछा जाने पर वे कहती हैं—

"ये वीर लक्ष्मण ही मेरे भावी पति हैं अतः इनकी जो गति होगी सो ही मेरी गति होगी।"

कन्याओं के मनोहारी वचन सुनकर अकस्मात् लक्ष्मण ऊपर की ओर दृष्टि उठाकर देखते हैं कि कन्याओं के मुख से सहसा शब्द निकलता है—

"हे नाथ! आप सब प्रकार से 'सिद्धार्थ' होओ।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक अस्त्र का

स्मरण हो आता है और वे उसके द्वारा रणक्षेत्र में हाहाकार मचा देते हैं। तब रावण चक्ररत्न का स्मरण करता है, चक्ररत्न हाथ में आते ही वह लक्ष्मण पर चला देता है। चक्ररत्न को आता हुआ देख अब तो मरना ही होगा ऐसा निश्चय करते हुए श्री लक्ष्मण वज्रमुखी बाणों से उसे रोकने को तत्पर हो जाते हैं। उस समय श्रीरामचन्द्र एक हाथ में वज्रावर्त धनुष से और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हल से, सुग्रीव गदा से, भामंडल तलवार से, विभीषण त्रिशूल से, हनुमान उल्का मुद्गर, लांगूल आदि से, अंगद परिध से, अंग कुठार से और अन्य विद्याधर भी शेष अस्त्रशस्त्रों से एक साथ मिलकर जीवन की आशा छोड़ उस चक्ररत्न को रोकने में लग जाते हैं किन्तु सब मिलकर भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। राम की सेना में व्यग्रता बढ़ रही है फिर भी भाग्य की बात देखो, वह चक्ररत्न लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणाएं देता है उसके सब रक्षकदेव विनय से खड़े हो जाते हैं और वह चक्ररत्न. लक्ष्मण के हाथ में आकर ठहर जाता है।

यह देख रावण एक क्षण के लिए चिन्तासागर में डूब जाता है—

"अहो! उस समय जगद्वंद्य अनन्तवीर्य केवली ने दिव्यध्वनि में जो कहा था कि लक्ष्मण नारायण होगा सो ऐसा लगता है कि यह वही नारायण आ गया है.....ओह!

धिक्कार हो इस राज्य लक्ष्मी को.....धिक्कार हो इन पंचेन्द्रिय विषयों को! हाय, हाय,! अब मैं इस भूमिगोचरी रंक से मरण को प्राप्त होऊँगा.....।"

उधर लक्ष्मण पुनः रावण को समझाते हुए कहते हैं—

"दशानन! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है यदि तुम सीता को वापस देकर कहो कि मैं रामचन्द्र के प्रसाद से जीवित हूँ तो तुम्हारी लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है।"

तब रावण गर्विष्ठ हो कहता है—

"अरे नीच! तू यदि इस चक्र से अपने को नारायण मान रहा है तो अपने को इन्द्र क्यों नहीं मान लेता?"

इत्यादि वार्तालाप के मध्य लक्ष्मण कहते हैं—

"बहुत कहने से क्या? अब मैं तुझे मारने वाला नारायण उत्पन्न हो चुका हूँ।"

ऐसा कहते हुए लक्ष्मण चक्र को घुमाकर चला देते हैं। रावण अपने चन्द्रहास खड्ग से उसे रोकना चाहता है किन्तु वह चक्र उसके वक्षस्थल को विदीर्ण कर देता है। रावण अर्धनिमिष मात्र में पृथ्वी पर गिर पड़ता है। उसकी सेना में चारों तरफ से हाहाकार मच जाता है।

"रथ हटाओ, मार्ग देखो, भागो भागो, स्वामी धरती पर गिर पड़े, अरे अरे! हटो, हटो....।"

इस तरह हलचल देख सुग्रीव, भामंडल, हनुमान आदि

तत्क्षण वस्त्र के छोर को ऊपर उठाकर अभय घोषणा करते हुए कहते हैं—

"डरो मत, डरो मत, शांत होओ, शांत होओ।"

इधर पुनः चक्ररत्न कृतकृत्य होता हुआ लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है और सब ओर से एक ही स्वर निकलता है—

"ये लक्ष्मण आठवें नारायण के रूप में प्रकट हुए हैं। जय हो, जय हो। श्री रामचन्द्र बलभद्र की जय हो, जय हो, अर्धचक्री नारायण लक्ष्मण की जय हो, जय हो।"

इधर युद्ध की विभीषिका समाप्त हो जाती है।

(१४)

सीता मिलन व भ्रातृ मिलन

भाई को पड़ा देख विभीषण मोह और शोक से पीड़ित हो अपना वध करने के लिए छुरी को उठाता है कि इसी बीच उसे मूर्च्छा आ जाती है। सचेत हो पुनः आत्मघात करने के लिए तैयार होता है। तब श्रीराम रथ से उतरकर बड़ी कठिनाई से उसे पकड़ रखते हैं। वह बार-बार मूर्च्छित हो जाता है और होश में आने पर घोर विलाप करता है—

"हे भाई! हे शूरवीर! हे आश्रितजनवत्सल! तुम इस पाप पूर्ण दशा को कैसे प्राप्त हो गये? ओह! तुम्हारे ही इस चक्र ने तुम्हारे वक्षस्थल को कैसे विदीर्ण कर डाला? हे

कृपासागर! मुझसे वार्तालाप करो, मुझे छोड़कर कहाँ चले गये.....?"

रामचन्द्र जैसे-तैसे उसे सान्त्वना देते हैं कि इसी बीच रावण की १८ हजार रानियाँ वहाँ एकत्रित हो जिस तरह करुण क्रंदन करती हैं कि वह लेखनी से नहीं लिखा जा सकता है। रत्नों की चूड़ियाँ तोड़-तोड़कर फेंक देती हैं और अपने वक्षस्थल को कूटते हुए बार-बार मूर्च्छा को प्राप्त हो जाती हैं। लक्ष्मण और विभीषण सहित श्री रामचन्द्र मंदोदरी आदि सभी को सान्त्वना देते हुए लंकेश्वर का विधिवत् दाह-संस्कार करते हैं। पुनः पद्म नामक महासरोवर में स्नान करके तीर पर बैठ जाते हैं और कुंभकर्ण आदि को छोड़ देने का आदेश देते हैं। भामंडल आदि मंत्रणा करते हैं—

"विभीषण का भी इस समय विश्वास नहीं करना चाहिए।"

"कुंभकर्ण, इन्द्रजीत आदि भी पिता की चिता जलती देख कुछ उपद्रव कर सकते हैं।"

अतः ये लोग सावधान हो पास में ही बैठ जाते हैं। रामचन्द्र के आदेश के अनुसार बेड़ियों से सहित कुंभकर्ण, इंद्रजित और मेघवाहन लाये जाते हैं। आपस में दुःख वार्ता के अनंतर श्रीराम उनसे राज्य को संभालने के लिए अनुरोध करते हैं किन्तु वे कहते हैं-

"अब हम लोग पाणिपात्र में ही आहार ग्रहण करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है।"

उस समय रामचन्द्र आदि उन्हें भोगों में लगाने के लिए सब कुछ उपाय करते हैं किन्तु सफल नहीं हो पाते हैं।

उसी दिन अंतिम प्रहर में श्री अनंतवीर्य महामुनि अपने छप्पन हजार आकाशगामी मुनियों के साथ वहाँ आकर कुसुमायुध उद्यान में ठहर जाते हैं। दो सौ योजन तक पृथ्वी उपद्रव रहित हो जाती है और वहाँ पर रहने वाले सभी जीव परस्पर में निर्वैर हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि—

"यदि यह संघ प्रातःकाल में आ जाता तो रावण और लक्ष्मण की परस्पर में परम प्रीति हो जाती।"

रात्रि में अनंतवीर्य सूरि को केवलज्ञान प्रगट हो जाता है और देवों के आगमन का दुंदुभि वाद्य आदि का मधुर शब्द होने लगता है। इन्द्रजित, कुम्भकर्ण और मेघवाहन आदि विद्याधर वहाँ पहुँच कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महामुनि बन जाते हैं। शशिकान्ता आर्यिका से संबोधन को प्राप्त हुई मंदोदरी आदि ४८ हजार स्त्रियाँ संयम धारण कर आर्यिका हो जाती हैं।

अनंतर राम-लक्ष्मण महावैभव के साथ लंका नगरी में प्रवेश करते हैं। सीता से मिलने के लिए उत्कंठित हुए प्रमदवन की तरफ चलते हैं। पतिदेव को आते हुए देख उनके स्वागत के लिए आकुल हुई सीता उठकर आगे कदम

बढ़ाती हैं, रामचन्द्र निकट आकर हाथ जोड़े हुए विनय से नम्र सीता का अपनी भुजाओं से आलिंगन कर लेते हैं। उस समय उनके सुख का अनुभव वे ही कर रहे हैं। शील शिरोमणि दम्पत्ति के समागम को देखकर आकाश से देवतागण पुष्पांजलि छोड़ते हैं। सर्वत्र सब तरफ से जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठती है—

"अहो! धन्य है सीता का धैर्य, धन्य है इसका शीलव्रत और धन्य है इसका शुद्ध आचरण।"

लक्ष्मण भी विनय से सीता के चरणयुगल को नमस्कार करते हैं और भामंडल भी भ्रातृ प्रेम से निकट आ जाते हैं सीता के नेत्रों में वात्सल्य के अश्रु आ जाते हैं। सुग्रीव, हनुमान आदि विद्याधर सीता देवी को सिर झुकाकर अभिवादन करते हैं अन्य सभी विद्याधर अपना-अपना परिचय देते हुए अभिवादन करते हैं। अनन्तर रामचन्द्र सीता का हाथ पकड़कर अपने साथ ऐरावत हाथी पर बिठाकर वहाँ से चलकर रावण के भवन में प्रवेश करते हैं।

श्री शांतिनाथ जिनालय में पहुँचकर भावविभोर हो स्तुति पाठ पढ़ते हुए वंदना करते हैं। अनंतर विभीषण के अनुरोध से उनके महल में प्रवेश करके पद्मप्रभ जिनालय में पहुँचकर श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र की वंदना करते हैं। पुनः विभीषण की प्रार्थना से स्नान आदि से निवृत्त होकर सभी

लोग वहीं पर भोजन करते हैं। तत्पश्चात् विभीषण, सुग्रीव आदि विद्याधर श्रीराम-लक्ष्मण के बलदेव-नारायण पद प्राप्ति के लिए राज्याभिषेक की तैयारी प्रारंभ कर देते हैं और पास आकर प्रार्थना करते हैं—

"हे देव! अब आप हम लोगों के द्वारा किये जाने वाले राज्याभिषेक को स्वीकार करके हम लोगों को सनाथ कीजिए।"

तब श्रीराम कहते हैं—

"पिता दशरथ की आज्ञा से अयोध्या में भरत का राज्याभिषेक किया गया था अतः वे ही तुम्हारे और हम दोनों के स्वामी हैं।"

विभीषण आदि कहते हैं—

"स्वामिन् ! जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषों से मान्य इस मंगलमय अभिषेक में क्या दोष है?"

"ओम्" स्वीकृति प्राप्त कर सभी विद्याधर इन दोनों का बलदेव और अर्धचक्री के पद के उचित महावैभवशाली राज्याभिषेक करके इनके ललाट पर उत्तम मुकुट बाँध देते हैं।

अनंतर वनवास के समय श्रीराम और लक्ष्मण ने जिन-जिन कन्याओं को विवाहा था, पत्र देकर भामंडल, हनुमान आदि को भेजकर उन सबको वहीं बुला लेते हैं। वहाँ लंका नगरी में सबके द्वारा स्तुति प्रशंसा को प्राप्त करते हुए और

दिव्य अनुपम भोगों को भोगते हुए इन राम-लक्ष्मण का समय सुख से व्यतीत हो रहा है।

(१५)

माता कौशल्या सुमित्रा के साथ अपने सतखण्डे महल की छत पर खड़ी हैं और पताका के शिखर पर बैठे हुए कौवे से कहती है-

"रे रे वायस! उड़ जा, उड़ जा, यदि मेरा पुत्र राम घर आ जायेगा तो मैं तुझे खीर का खोजन देऊँगी।"

पागल सदृश हुई कौशल्या को जब कौवे की तरफ से कोई उत्तर नहीं मिलता है तब वह नेत्रों से अश्रु वर्षाते हुए विलाप करने लगती है—

"हाय पुत्र! तू कहाँ चला गया? ओह!....बेटा! तू कब आयेगा? मुझ मंदभागिनी को छोड़कर कहाँ चला गया?....."

इतना कहते-कहते दोनों माताएं मुक्त कंठ से रोने लगती हैं। इसी बीच क्षुल्लक के वेष में अवद्वार नाम के नारद को आते देख उनको आसन देती हैं। बगल में वीणा दबाए नारद माता को रोते देख आश्चर्यचकित हो पूछते हैं—

"मातः! दशरथ की पट्टरानी, श्रीराम की सावित्री माँ! तुम्हारे नेत्रों में ये अश्रु कैसे? क्यों?.....कहो, कहो, जल्दी कहो किसने तुम्हें पीड़ा पहुँचाई है?"

कौशल्या कहती है—

"देवर्षि! आप बहुत दिन बाद आये हैं अतः आपको कुछ मालूम नहीं है कि यहाँ क्या-क्या घटनाएं घट चुकी हैं?"

"मातः! मैं धातकीखंड में श्री तीर्थंकर भगवान की वंदना करने गया था उधर ही लगभग २३ वर्ष तक समय निकल गया। अकस्मात् आज मुझे अयोध्या की स्मृति हो आई कि जिससे मैं आकाश मार्ग से आ रहा हूँ।"

कुछ शांत चित्त हो अपराजिता 'सर्वभूतिहित' मुनि का आगमन, पति का दीक्षा ग्रहण, राम का वनवास, सीताहरण और लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार के बाद विशल्या का भेजना यहाँ तक का सब समाचार सुना कर पुनः रोने लगती है और कहती है—

"हे नारद! आगे क्या हुआ? सो मुझे कुछ भी विदित नहीं है मेरा पुत्र सुख में है या दुःख में कौन जाने?..... इतना कहकर पुनः विलाप करती है—

"हे पुत्र! तू किस दशा मे है? मुझे खबर दे। हे पतिव्रते सीते! बेटी! तेरा संकट से छुटकारा हुआ या नहीं? तू दुष्ट रावण द्वारा कैसे हरी गई? समुद्र के मध्य भयंकर दुःख को कैसे झेला होगा?"

यह सब सुनते हुए नारद उद्विग्नमना हो वीणा को एक तरफ फेंक देते हैं और मस्तक पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं।

पुनः कुछ क्षण विचार कर कहते हैं—

"हे कौशल्ये! हे शुभे! अब तुम शोक छोड़ो। मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्रों का समाचार लाता हूँ। हे देवि! इतना कार्य तो मैं ही कर सकता हूँ। शेष कार्य में आपका पुत्र ही समर्थ है।"

इतना कहकर नारद बगल में वीणा दबाकर आकाश मार्ग से उड़ गये।.....वे नारद लंका नगरी में पहुँच कर पद्म सरोवर के तट पर क्रीड़ा करते हुए अंगद के साथियों से पता लगाकर श्रीराम की सभा में पहुँचे। नमस्कार करके आसन पर बिठाकर उनका कुशल समाचार पूछने के बाद रामचन्द्र पूछते हैं—

"हे देवर्षि! इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"मैं दुःख के सागर में डूबी हुई आपकी माता के पास से आपको उनका समाचार बताने के लिए आ रहा हूँ। हे देव! आपके बिना आपकी माता बालक से बिछुड़ी हुई सिंहनी के समान व्याकुल हो रही हैं। तुम जैसे सुपुत्र के रहते हुए वह पुत्रवत्सला माता रो-रो कर महल में छोटा-मोटा सरोवर बना रही हैं। ओह!.....श्रीराम! उठो, जल्दी चलो, माता के दर्शन करो, क्यों बैठे हो?"

इतना सुनते ही रामचन्द्र विह्वल हो उठते हैं। उनकी आँखें सजल हो जाती हैं। लक्ष्मण भी रो पड़ते हैं। तब विद्याधर लोग उन्हें सान्त्वना देने लगते हैं। रामचन्द्र कहते हैं—

"अहो ऋषे! इस समय आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है। कुछ अशुभोदय से हम लोग माताओं को बिल्कुल ही भूल गये थे। अहो! आपने स्मरण दिला दिया, सो इससे प्रिय और क्या हो सकता है? जो माता की विनय में तत्पर रहते हैं वास्तव में वे ही सत्पुत्र कहलाते हैं।"

इतना कहकर श्रीरामचन्द्र नारद की पूजा करते हैं पुनः विभीषण भामण्डल, सुग्रीव आदि को बुलाकर कहते हैं—

"हे विभीषण! इन्द्रध्वज सरीखे इस भवन में मुझे रहते हुए लगभग छह वर्ष का लम्बा समय व्यतीत हो गया। यद्यपि माता के दर्शनों की लालसा हृदय में विद्यमान थी फिर भी आज मैं उनके दर्शन करके ही शांति का अनुभव करूँगा तथा दूसरी माता के समान अयोध्या के दर्शन की भी उत्कंठा हो रही है।"

विभीषण ने समझ लिया कि अब इन्हें यहाँ रोकना शक्य नहीं है तब वे कहते हैं—

"हे नाथ! यद्यपि आपका वियोग हम लोगों को सहना ही होगा, फिर भी आप कम से कम भी सोलह दिन की अवधि मुझे और दीजिए। हे देव! मैं अभी-अभी अयोध्या के लिए दूत को भेज रहा हूँ।"

जब राम असमर्थता व्यक्त करने लगते हैं तब विभीषण अपने मस्तक को उनके चरणों में रख देते हैं

और जब राम उनकी बात मानकर 'तथास्तु' कह देते हैं तभी वे मस्तक ऊपर उठाते हैं। पुनः विभीषण, सुग्रीव आदि मंत्रणा करके माता के पास समाचार भिजवा देते हैं और अयोध्या नगरी को इतनी अच्छी सजाते हैं कि वह एक नवीन ही रूप धारण कर लेती है। रत्नों के बने हुए तोरणद्वार, पताकायें, मंगल कलश आदि से वह नगरी अनुपम शोभा को प्राप्त हो जाती है।

विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर और सुग्रीव आदि को यथायोग्य राज्य देकर श्रीराम सीता सहित पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अयोध्या की तरफ प्रस्थान कर देते हैं। लक्ष्मण, भामंडल आदि अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर चल पड़ते हैं। मार्ग में सीता को परिचित स्थानों की स्मृति दिलाते हुए रामचन्द्र अयोध्या के निकट पहुँच जाते हैं।

इधर से राजा भरत हाथी पर सवार हो भाइयों के स्वागत हेतु नगरी के बाहर आ जाते हैं। भरत को आता देख श्रीराम अपने विमान को पृथ्वी पर उतार लेते हैं उस समय भरत हाथी से उतरकर स्नेह से पूरित हो सैकड़ों अर्घ्यों से उनकी पूजा करते हैं और कर-कमल जोड़कर नमस्कार करते हैं। राम उन्हें अपनी भुजाओं में भर लेते हैं। उस समय 'भ्रातृ-मिलन' अपने आप में एक ही उदाहरण

रह जाता है चूँकि उसके लिए अन्य उदाहरण और कोई भी नहीं हो सकता है।

पुनः राम लक्ष्मण और भरत को पुष्पक विमान में बिठाकर नगरी में प्रवेश करते हैं। वहाँ के लोग कृतकृत्य हो राम की आरती कर रहे हैं, पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और जय-जयकारों की ध्वनि से पृथ्वीतल एवं आकाशमंडल को एक कर रहे हैं। सभी लोग आपस में एक-दूसरे का परिचय करा रहे हैं। ये लोग सर्व प्रथम राजभवन में पहुँचते हैं। माताएं महल की छत से उतर कर नीचे आ जाती हैं।

कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा मंगलाचार में कुशल चारों माताएं राम-लक्ष्मण के समीप आती हैं। दोनों भाई विमान से उतरकर माता के चरणों में नमस्कार करते हैं। उस समय स्नेह से पूरित उन माताओं के स्तनों से दूध झरने लगता है। वे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए पुत्रों का आलिंगन करती हैं। उनकी आँखों से वात्सल्य के अश्रू बरसने लगते हैं। पुत्रों के मस्तक पर हाथ फेरते हुए उन माताओं को इतना सुख का अनुभव होता है कि वह अपने आप में नहीं समाता है। सीता को हृदय से लगाकर उसे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए माता कौशल्या एक अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त हो जाती हैं।

(१६)

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न माताओं और अपनी-अपनी स्त्रियों के मन को आह्लादित करते हुए धर्म चर्चा में तत्पर हैं। बलभद्र और नारायण के प्रभाव से जो वैभव प्रगट हुआ है उसका वर्णन कौन कर सकता है? अयोध्या नगरी में निवास करने वालों की संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ है। राम की गोशाला में एक करोड़ से अधिक गायें कामधेनु के समान दूध देने वाली हैं। नंद्यावर्त नाम की उनकी सभा है और हल, मूसल, रत्न तथा सुदर्शन नाम का चक्ररत्न है। उस समय वहाँ पर जैसी सुवर्ण और रत्नों की राशि थी शायद वैसी तीन लोक में भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी।

रामचन्द्र ने हजारों चैत्यालय बनवाये और बड़े-बड़े महाविद्यालयों का निर्माण कराया जिनमें भव्यजीव नित्य ही पूजा-विधान महोत्सव किया करते हैं और विद्यालयों में बालक-बालिकाएं सर्वतोमुखी शिक्षा ग्रहण कर अपना बाल्य जीवन सफल बना रहे हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्या नगरी के सभी नर-नारी महान् पुण्य का संचय करने ही यहाँ आये हैं। किमिच्छकदान में जब किसी से कहा जाता है कि 'जो चाहो-सो ले जावो' तब वह यही कहता है कि मेरे यहाँ कोई स्थान खाली ही नहीं है। सर्वत्र

सुवर्ण और रत्नों के ढेर रखे हुए हैं।

इतना सब कुछ होते हुए और डेढ़ सौ स्त्रियों के बीच में रहते हुए भी भरत सोच रहे हैं—

श्रीमान् बलभद्र रामचन्द्र जी भी अब घर आ चुके हैं अब मुझे जैसे भी बने वैसे आत्महित के साधन में लगना है। कैकेयी भरत को विरक्तमना देख पुनः व्याकुल हो जाती है और राम से निवेदन करती है कि आप जैसे बने वैसे इन्हें रोको। रामचन्द्र भरत से कहते हैं—

"बंधुवर! पिता ने जगत् का शासन करने के लिए आपका राज्याभिषेक किया था इसलिए हम लोगों के भी आप स्वामी हो। यह सुदर्शन चक्र, ये सब विद्याधर तुम्हारी आज्ञा में तत्पर हैं। मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर छत्र लगाता हूँ, शत्रुघ्न चमर ढोरेगा और लक्ष्मण तेरा मंत्री रहेगा।" भरत हाथ जोड़कर कहते हैं-

"हे देव! अब आप मुझे क्यों रोक रहे हो? मैं अब संसार के परिभ्रमण से पूर्णतया ऊब चुका हूँ। अब मुझे तपोवन में प्रवेश करने दीजिए।"

तब पुनः रामचन्द्र कहते हैं—

"यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो पुनः मैं पूर्ववत् वन में चला जाऊँगा।"

अनेक वार्तालाप के अनन्तर रामचन्द्र के नेत्र में अश्रु

आ जाते हैं। भरत सिंहासन से उठ खड़े हो जाते हैं और रोती हुई माता को समझा रहे हैं कि इसी बीच राम की आज्ञा से सीता, विशल्या आदि सभी स्त्रियाँ आ जाती हैं एवं भरत को घेरकर उनसे वन क्रीड़ा के लिए अनुरोध करती हैं-

"हे देवर! हम लोगों पर प्रसन्नता कीजिए हम लोग आप के साथ वन क्रीड़ा करना चाहती हैं।"

भरत दाक्षिण्यवश उन सबकी बात मान लेते हैं। वन में जाकर सरोवर में स्नान आदि करके कमल तोड़कर उनसे जिनेन्द्रदेव की पूजा करते हैं। पुनः हजारों भावजों और डेढ़ सौ स्त्रियों के बीच भरत सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। इसी बीच त्रिलोकमंडन नाम का महागजराज आलान बंधन को तोड़कर महा-उपद्रव करता हुआ उसी तरफ आ जाता है। श्रीरामचन्द्र आदि उसे रोकने के लिए तत्पर हो जाते हैं किन्तु वह भरत को देखते ही एकदम शांत हो विनय से पास में बैठ जाता है। उसे तत्काल जातिस्मरण हो जाने से वह शोक से आक्रान्त हो जाता है।

भरत उस गजराज पर सवार हो सर्व-परिजन के साथ अपने महल में आते हैं। उधर सर्वत्र हाथी विषयक ही चर्चा चल पड़ती है।

राजसभा में राजा रामचन्द्र के समीप महावत आदि प्रमुख जन आकर निवेदन करते हैं—

"देव! आज चौथा दिन है, त्रिलोकमंडन हाथी ने एक ग्रास भी नहीं लिया है वह सूंड पटकता है और सूं-सूं कर रहा है। हम लोग अनुनय, विनय, सेवा, शुश्रूषा, औषधि आदि सभी उपाय करके हार चुके हैं। अब आपको निवेदन करना ही हमारा कर्तव्य शेष रहा है। अब आपको जो उचित जँचे सो कीजिए।"

हाथी का ऐसा समाचार सुनकर राम-लक्ष्मण भी चिंतित हो जाते हैं—

"अहो! क्यों तो वह बंधन तोड़कर बाहर आया? क्यों भरत को देखकर शांत हुआ? और क्यों पुनः भोजन पान छोड़ बैठा है? क्या कारण है?"

सभा विसर्जित हो जाती है। उधर देशभूषण-कुलभूषण केवली विहार करते हुए वहाँ आ जाते हैं। देवों द्वारा निर्मित दिव्यगन्धकुटी में विराजमान भगवान का दर्शन करने के लिए सभी राजा-प्रजा वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। श्रीराम भी दर्शन करके अपने कोठे में बैठकर हाथी के भवांतर को कहने के लिए प्रार्थना करते हैं। भगवान् की दिव्य देशना खिरती है—

"रामचन्द्र! भगवान् ऋषभदेव के समय दीक्षित हुए चार हजार राजाओं में सूर्योदय और चन्द्रोदय नाम के दो भाई भी दीक्षित हो गये थे। वे मरीचि के शिष्य पारिव्राजक हो गये थे।

असंख्य भवों तक परिभ्रमण करते हुए पुनः सूर्योदय का जीव मृदुमति मुनि हो गया। एक समय गुणनिधि मुनि की पर्वत पर देवों ने पूजा की, अनन्तर वे आकाश से विहार कर गये तब मृदुमति मुनि वहाँ चर्या के लिए आये, उन्हें देखकर श्रावकों ने कहा, "आप की देव भी पूजा करते हैं अतः आप धन्य हैं।" इतना सुनकर मृदुमति ने सोचा, "यदि मैं कहूँगा कि मैं वह मुनि नहीं हूँ, तो ये लोग ऐसी पूजा नहीं करेंगे।" अतः मौन से रहकर उसने आत्म वंचना कर ली। समाधि से मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में दिव्य सुख भोग कर उस मायाचारी के पाप से यह त्रिलोकमंडन नाम का हाथी हो गया है और चन्द्रोदय का जीव कभी चक्रवर्ती का पुत्र अभिराम हुआ। पिता के अति आग्रह से दीक्षा न ले सका अतः वह घर में ही तीन हजार स्त्रियों के बीच रह कर पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पक्ष, महीने आदि में पारणा करता था। इस तरह चौंसठ हजार वर्ष तक उसने असिधारा व्रत का पालन किया पश्चात् समाधि से मर कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ दोनों देव परस्पर में परम प्रीति को प्राप्त थे। आज वह चन्द्रोदय तो भरत है और यह सूर्योदय का जीव हाथी है। भरत को देखकर इसे जातिस्मरण हो जाने से यह शोक से आक्रांत हो रहा है। इतना सुनने के बाद हाथी ने भी सम्यग्दर्शन और अणुव्रत को ग्रहण कर लिया। भरत भी हाथ जोड़कर विनय करते हैं—

"हे भगवन् ! अब मुझे संसार समुद्र से पार करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।"

इतना कहकर वे वस्त्राभूषणों का त्याग करके केशलोंच करके निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। भरत के अनुराग से प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजा भी राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर मुनि दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। कैकेयी को शोक से विह्वल देख राम-लक्ष्मण बहुत समझाते हैं किन्तु वह निर्मल सम्यक्त्व को ग्रहण कर तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमती आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं।

अनन्तर राम-लक्ष्मण भरत के गुणों का स्मरण कर उद्विग्न हो उठते हैं। इसी बीच राजा लोग अमात्य सहित आकर प्रार्थना करते हैं—

"हे नाथ! हम विद्वान हों या मूर्ख। हम लोगों पर प्रसन्न होइये। हे पुरुषोत्तम! अब आप राज्याभिषेक की स्वीकृति दीजिए।"

राम कहते हैं—

"हे महानुभावों! जहाँ राजाओं का राजा लक्ष्मण मेरे चरणों का सेवक है वहाँ हमें राज्य की क्या आवश्यकता है? अतः आप लोग उन्हीं का राज्याभिषेक करो।" इतना सुनकर लोग लक्ष्मण के पास पहुँचते हैं तब लक्ष्मण स्वयं उठकर राम के पास आते हैं और राज्याभिषेक का कार्यक्रम

शुरू हो जाता है। महान वैभव के साथ अनेक राजागण सुवर्ण कलशों से राम और लक्ष्मण का बलभद्र और नारायण के पद पर महाराज्याभिषेक करते हैं। पुनः सीता देवी और विशल्या का भी राज्याभिषेक सम्पन्न होता है। सीता को आठ हजार रानियों में पट्टमहिषी का पट्ट बाँधा जाता है और विशल्या को सत्रह हजार रानियों में पट्टरानी घोषित किया जाता है। उस समय श्री रामचन्द्र विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि को यथायोग्य राज्य प्रदान करते हैं और शत्रुघ्न को उसी की इच्छानुसार मथुरा का राज्य दे देते हैं।

उस रामराज्य में प्रजा स्वर्ग सुख का अनुभव कर रही है। उस नगरी में सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार हैं जो अपनी कुमार क्रीड़ा से सबका मन हरण कर रहे हैं, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा श्रीराम और लक्ष्मण के चरणों की सेवा कर रहे हैं।

(१७)

शत्रुघ्न द्वारा मथुरा नगरी के लिए प्रयाण-राजा मधुसुंदर का समाधिमरण

एक दिन महाराजा श्री रामचन्द्र ने अपने भाई शत्रुघ्न से कहा—

"शत्रुघ्न! इस तीन खण्ड की वसुधा में तुम्हें जो देश

इष्ट हो उसे स्वीकृत कर लो। क्या तुम अयोध्या का आधा भाग लेना चाहते हो? या उत्तम पोदनपुर को? राजगृह नगर चाहते हो या मनोहर पौंड्र नगर को?"

इत्यादि प्रकार से श्री राम और लक्ष्मण ने सैकड़ों राजधानियाँ बताई तब शत्रुघ्न ने बहुत कुछ विचार कर मथुरा नगरी की याचना की। तब श्री राम ने कहा—

"मथुरा का राजा मधु है वह हम लोगों का शत्रु है यह बात क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है? वह मधु रावण का जमाई है और चमरेन्द्र ने उसे ऐसा शूलरत्न दिया हुआ है जो कि देवों के द्वारा भी दुर्निवार है, वह हजारों के भी प्राण हरकर पुनः उसके हाथ में आ जाता है। इस मधु का लवणार्णव नाम का पुत्र है वह विद्याधरों के द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीर को तुम किस तरह जीत सकोगे?"

बहुत कुछ समझाने के बाद भी शत्रुघ्न ने यही कहा कि-

"इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिए। यदि मैं उस मधु को मधु के छत्ते के समान तोड़कर नहीं फेंक दूँ तो मैं राजा दशरथ के पुत्र होने का ही गर्व छोड़ दूँ। हे भाई! आपके आशीर्वाद से मैं उसे दीर्घ निद्रा में सुला दूँगा।"

अनन्तर श्री राम के द्वारा मथुरा नगरी को प्राप्त करने की स्वीकृति मिल जाने पर शत्रुघ्न वहाँ जाने के लिए तैयार हुए

तब श्री रामचन्द्र ने शत्रुघ्न को एकांत में ले जाकर कहा—

"हे धीर! मैं तुमसे कुछ याचना करता हूँ तुम मुझे एक दक्षिणा दो।"

शत्रुघ्न ने कहा-"आप असाधारण दाता हैं फिर भी मुझसे कुछ मांग रहे हैं इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या प्रशंसनीय होगा? आप मेरे प्राणों के भी स्वामी हैं, एक युद्ध के विघ्न को छोड़कर आप कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

तब श्री राम ने कुछ चिंतन करके कहा—

"हे वत्स! जब मधु शूलरत्न से रहित हो तभी तुम अवसर पाकर उससे युद्ध करना अन्य समय में नहीं.....।"

तब शत्रुघ्न ने कहा-"जैसी आपकी आज्ञा है ऐसा ही होगा।"

इसके बाद शत्रुघ्न ने जिनमंदिर में जाकर सिद्ध परमेष्ठियों की पूजा करके घर जाकर भोजन किया पुनः माता के पास पहुँचकर प्रणाम करके मथुरा की ओर प्रस्थान के लिए आज्ञा माँगी। माता सुप्रभा ने पुत्र के मस्तक पर हाथ फेरकर उसे अपने अर्धासन पर बिठाकर प्यार से कहा—

"हे पुत्र! तू शत्रुओं को जीतकर अपना मनोरथ सिद्ध कर। हे वीर! तुझे युद्ध में शत्रु को पीठ नहीं दिखाना है। हे वत्स! जब तू युद्ध में विजयी होकर आयेगा तब मैं सुवर्ण के कमलों से जिनेन्द्रदेव की परम पूजा करूँगी।"

इसके बाद अनेक मंगल कामना के साथ माता ने शत्रुघ्न को अनेक शुभ आशीर्वाद प्रदान किये ।

करस्थामलकं यद्वल्लोकालोकं स्वतेजसा।
पश्यंतं केवलालोका भवंतु तव मंगलम्।।१।।
कर्मणाष्टप्रकारेण मुक्तास्त्रैलोक्यमूर्द्धगाः।
सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स! भवन्तु तव मंगलम् ।।२।।
कमलादित्यचंद्रक्षमामन्दराब्धिवियत् समाः।
आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मंगलम् ।।३।।
परात्मशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः।
सदायुष्मनुपाध्यायाः कुर्वन्तु तव मंगलम् ।।४।।
तपसा द्वादशांगेन निर्वाणं साधयन्ति ये।
भद्र! ते साधवः शूरा भवन्तु तव मंगलम् ।।५।।

जो अपने तेज से समस्त लोक-अलोक को हाथ पर रखे हुए आंवले के समान देख रहे हैं ऐसे केवलज्ञानी अर्हन्त भगवान् तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें। जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित होकर त्रिलोक शिखर पर विराजमान हैं, सिद्धि को करने वाले ऐसे सिद्ध भगवान् हे वत्स! तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें। जो कमल के समान् निर्लिप्त, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, पृथ्वी के समान निश्चल, सुमेरु के समान उन्नत, समुद्र के समान गंभीर और आकाश के समान निःसंग हैं तथा परम आधार स्वरूप

हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तुम्हारे लिए मंगल रूप होवें। जो स्व-पर के शासन के जानने वाले हैं जो अपने अनुगामी जनों को सदा धर्मोपदेश देते हैं। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन्! तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें। जो बारह तप के द्वारा मोक्ष की सिद्धि करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र! तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें।"

इस प्रकार से विघ्नों के नाशक दिव्य स्वरूप ऐसे आशीर्वाद को प्राप्त कर माता को प्रणाम कर शत्रुघ्न घर से बाहर निकले। सुवर्णमयी मालाओं से युक्त हाथी पर सवार होकर मथुरा की ओर प्रस्थान कर दिया। उस समय भ्रातृ प्रेम से प्रेरित हुए श्री राम और लक्ष्मण भी शत्रुघ्न के साथ-साथ तीन पड़ाव तक गये थे। अनन्तर सैकड़ों राजाओं से घिरे हुए थे। इस समय लक्ष्मण नारायण ने अपना सागरावर्त धनुषरत्न और अग्निमुख नाम के अनेक बाण उसे दे दिये। श्री राम ने अपने सेनापति कृतांतवक्त्र को ही उनका सेनापति बना दिया था।

बहुत बड़ी सेना के साथ शत्रुघ्न ने क्रम-क्रम से पुण्यभागा नदी को पार कर आगे पहुँचकर अपनी सेना ठहरा दी और गुप्तचरों को मथुरा भेज दिया। उन लोगों ने आकर समाचार दिया—

"देव! सुनिए, यहाँ से उत्तर दिशा में मथुरा नगरी है वहाँ नगर के बाहर एक सुन्दर राजउद्यान है। इस समय राजा

मधुसुन्दर अपनी जयंत रानी के साथ वहीं निवास कर रहा है। कामदेव के वशीभूत हुए और सब काम को छोड़कर रहते हुए आज छठा दिन है। तुम्हारे आगमन का उसे अभी तक कोई पता नहीं है।"

गुप्तचरों के द्वारा सर्व समाचार विदित कर शत्रुघ्न ने यही अवसर अनुकूल समझकर साथ में एक लाख घुड़सवारों को लेकर वह मथुरा की ओर बढ़ गया। अर्धरात्रि के बाद शत्रुघ्न ने मथुरा के द्वार में प्रवेश किया। इधर शत्रुघ्न के बंदीगणों ने—

"राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न की जय हो।" ऐसी जयध्वनि से आकाश को गुंजायमान कर दिया था। तब मथुरा के अन्दर किसी शत्रुराजा का प्रवेश हो गया है ऐसा जानकर शूरवीर योद्धा जग पड़े। इधर शत्रुघ्न ने मधु के राजमहल में प्रवेश किया और मधु की आयुधशाला पर अपना अधिकार जमा लिया।

शत्रुघ्न को मथुरा में प्रविष्ट जानकर महाबलवान् राजा मधुसुन्दर रावण के समान क्रोध को करता हुआ उद्यान से बाहर निकला किन्तु शत्रुघ्न से सुरक्षित मथुरा के अन्दर व अपने महल में प्रवेश करने में असमर्थ ही रहा तब वह अपने शूलरत्न को प्राप्त नहीं कर सका फिर भी उसने शत्रुघ्न से सन्धि नहीं की प्रत्युत् युद्ध के लिए तैयार हो गया।

वहाँ दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध शुरू हो गया। इधर मधुसुन्दर के पुत्र लवणार्णव के साथ कृतांतवक्त्र सेनापति का युद्ध चल रहा था। बहुत ही प्रकार से गदा, खड्ग आदि से एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए अन्त में कृतांतवक्त्र के द्वारा शक्ति नामक शस्त्र के प्रहार से वह लवणार्णव मृत्यु को प्राप्त हो गया। पुनः राजा मधु और शत्रुघ्न का बहुत देर तक युद्ध चलता रहा। बाद में मधु ने अपने को शूलरत्न से रहित जानकर तथा पुत्र के महाशोक से अत्यंत पीड़ित होता हुआ शत्रु की दुर्जेय स्थिति समझकर मन में चिंतन करने लगा—

"अहो! मैंने दुर्दैव से पहले अपने हित का मार्ग नहीं सोचा, यह राज्य, यह जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। मैं मोह के द्वारा ठगा गया हूँ। पुनर्जन्म अवश्य होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापी ने समय रहते हुए कुछ नहीं सोचा। अहो! जब मैं स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई? अब मैं शत्रु के सन्मुख क्या कर सकता हूँ? अरे! जब भवन में आग लग जावे तब कुंआ खुदवाने से भला क्या होगा.....?"

ऐसा चिंतवन करते हुए राजा मधु एकदम संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया। तत्क्षण ही उसने अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियों को नमस्कार करके चारों मंगल, लोकोत्तम और शरणभूत की शरण लेता

हुआ अपने दुष्कृतों की आलोचना करके सर्व सावद्य योग—सर्व आरंभ-परिग्रह का भावों से ही त्याग करके यथार्थ समाधिमरण करने में उद्यमशील हो गया। उसने सोचा-

"अहो! ज्ञान-दर्शन स्वरूप एक आत्मा ही मेरा है वही मुझे शरण है। न तृण सांथरा है न भूमि, बल्कि अंतरंग-बहिरंग परिग्रह को मन से छोड़ देना ही मेरा संस्तर है।.....।"

ऐसा विचार करते हुए उस घायल स्थिति में ही शरीर से निर्मम होते हुए राजा मधुसुन्दर ने हाथी पर बैठे-बैठे ही केशलोंच करना शुरू कर दिया।

युद्ध की इस भीषण स्थिति में भी अपने हाथों से अपने सिर के बालों का लोच करते हुए देखकर शत्रुघ्न कुमार ने आगे आकर उन्हें नमस्कार किया और बोले—

"हे साधो! मुझे क्षमा कीजिए.....। आप धन्य हैं कि जो इस रणभूमि में भी सर्वारंभ-परिग्रह का त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा के सन्मुख हुए हैं।"

उस समय जो देवांगनाएं आकाश में स्थित हो युद्ध देख रही थीं उन्होंने महामना मधु के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। इधर राजा मधु ने परिणामों की विशुद्धि से समता भाव धारण करते हुए प्राण छोड़े और समाधिमरण—वीरमरण के प्रभाव से तत्क्षण ही सानत्कुमार नाम के तीसरे स्वर्ग में उत्तम देव हो गये।

इधर वीर शत्रुघ्न भी संतुष्ट हुआ और युद्ध को विराम देकर सभी प्रजा को अभयदान देते हुए मथुरा में आकर रहने लगा।

(१८)

मथुरानगरी में महामारी प्रकोप, सप्तर्षि के चातुर्मास से कष्ट निवारण

राजा मधुसुन्दर का वह दिव्य शूलरत्न यद्यपि अमोघ था फिर भी शत्रुघ्न के पास वह निष्फल हो गया, उसका तेज छूट गया और वह अपनी विधि से च्युत हो गया। तब वह (उसका अधिष्ठाता देव) खेद, शोक और लज्जा को धारण करता हुआ अपने स्वामी असुरों के अधिपति चमरेन्द्र के पास गया। शूलरत्न के द्वारा मधु के मरण का समाचार सुनकर चमरेन्द्र को बहुत ही दुःख हुआ। वह बार-बार मधु के सौहार्द का स्मरण करने लगा। तदनंतर वह पाताल लोक से निकलकर मथुरा जाने को उद्यत हुआ। तभी गरुड़कुमार देवों के स्वामी वेणुधारी इन्द्र ने इसे रोकने का प्रयास किया। किन्तु यह नहीं माना और मथुरा में पहुँच गया।

वहाँ चरमेन्द्र ने देखा कि मथुरा की प्रजा शत्रुघ्न के आदेश से बहुत बड़ा उत्सव मना रही है तब वह विचार करने लगा-

"ये मथुरा के लोग कितने कृतघ्न हैं कि जो दुःख-

शोक के अवसर पर भी हर्ष मना रहे हैं। जिसने हमारे स्नेही राजा मधु को मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देश को नष्ट कर दूँगा।"

इत्यादि प्रकार से क्रोध से प्रेरित हो उस चमरेन्द्र ने मथुरा के लोगों पर दुःसह उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। जो जिस स्थान पर सोये थे बैठे थे वे महारोग (महामारी) के प्रकोप से दीर्घ निद्रा को प्राप्त हो गये—मरने लगे।

इस महामारी उपसर्ग को देखकर कुल देवता की प्रेरणा से राजा शत्रुघ्न अपनी सेना के साथ अयोध्या वापस आ गये।

विजय को प्राप्त कर आते हुए शूरवीर शत्रुघ्न का श्रीराम-लक्ष्मण ने हर्षित हो अभिनंदन किया। माता सुप्रभा ने भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सुवर्ण के कमलों से जिनेन्द्रदेव की महती पूजा सम्पन्न करके धर्मात्माओं को दान दिया। पुनः दीन-दुःखी जनों को करुणादान देकर सुखी किया। यद्यपि वह अयोध्या नगरी सुवर्ण के महलों से सहित थी फिर भी पूर्वभवों के संस्कारवश शत्रुघ्न का मन मथुरा में ही लगा हुआ था।

इधर मथुरा नगरी के उद्यान में गगनगामी ऋद्धिधारी सात दिगम्बर महामुनियों ने वर्षायोग धारण कर लिया—चातुर्मास स्थापित कर लिया। इनके नाम थे-सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस और जयमित्र।

प्रभापुर नगर के राजा श्रीनंदन की धारिणी रानी के ये सातों पुत्र थे। प्रीतिंकर मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हो

जाने पर देवों को जाते हुए देखकर प्रतिबोध को प्राप्त हुए थे। उस समय राजा श्रीनंदन ने अपने एक माह के पुत्र को राज्य देकर अपने सातों पुत्रों के साथ प्रीतिंकर भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली थी। समय पाकर श्रीनंदन ने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया था और ये सातों मुनि तपस्या के प्रभाव से अनेक ऋद्धियों को प्राप्त कर सातऋषि (सप्तर्षि) के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे।

उद्यान में वटवृक्ष के नीचे ये सातों मुनि चातुर्मास में स्थित हो गये थे। इन मुनियों के तपश्चरण के प्रभाव से उस समय मथुरा में चमरेन्द्र के द्वारा फैलायी गयी महामारी एकदम नष्ट हो गई थी। वहाँ नगरी में चारों तरफ के वृक्ष फलों के भार से लद गये थे और खेती भी खूब अच्छी हो रही थी। ये मुनिराज रस-परित्याग, बेला, तेला आदि तपश्चरण करते हुए महातप कर रहे थे। कभी-कभी ये आहार के समय आकाश को लांघकर निमिषमात्र में विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूर नगरों में जाकर आहार ग्रहण करते थे। वे महामुनिराज परगृह में अपने करपात्र में केवल शरीर की स्थिति के लिए आहार लेते थे।

एक दिन ये सातों ही महाऋषिराज जूड़ाप्रमाण (चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखते हुए अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। वे विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठ के घर के दरवाजे पर पहुँचे। उन मुनियों को देखकर अर्हद्दत्त सेठ

विचार करने लगा—

"यह वर्षाकाल कहाँ? और इन मुनियों की यह चर्या कहाँ? इस नगरी के आस-पास पर्वत की कंदराओं में, नदी के तट पर, वृक्ष के नीचे, शून्य घर में, जिनमंदिर में तथा अन्य स्थानों में जहाँ कहीं जो भी मुनिराज स्थित हैं वे सब वर्षायोग पूरा किये बिना इधर-उधर नहीं जाते हैं। परन्तु ये मुनि आगम के विपरीत चर्या वाले हैं, ज्ञान से रहित और आचार्यों से रहित हैं। इसलिए ये इस समय यहाँ आ गये हैं। यद्यपि ये मुनि असमय में आये थे फिर भी अर्हद्दत्त के अभिप्राय को समझने वाली वधू ने उनका पड़गाहन करके उन्हें आहारदान दिया।

आहार के बाद ये सातों मुनि तीन लोक को आनंदित करने वाले ऐसे जिनमंदिर में पहुँचे जहाँ भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान थी और शुद्ध निर्दोष प्रवृत्ति करने वाले दिगम्बर साधुगण भी विराजमान थे।

ये सातों मुनिराज पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चल रहे थे। ऐसे इन मुनियों को वहाँ पर स्थित द्युति भट्टारक—द्युति नाम के आचार्य देव ने देखा। इन मुनियों ने उत्तम श्रद्धा से पैदल चलकर ही जिनमंदिर में प्रवेश किया तब द्युति भट्टारक ने खड़े होकर नमस्कार कर विधि से उनकी पूजा की।

"यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वंदना करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।"

ऐसा सोचकर उन द्युति आचार्य के शिष्यों ने उन

सप्तर्षियों की निंदा का विचार किया। तदनंतर सम्यक् प्रकार से स्तुति करने में तत्पर वे सप्तर्षि मुनिराज जिनेन्द्र भगवान् की वंदना कर आकाशमार्ग से पुनः अपने स्थान पर चले गये। जब वे आकाश में उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जानकर द्युति आचार्य के शिष्य जो अन्य मुनि थे उन्होंने अपनी निंदा गर्हा आदि करके प्रायश्चित कर अपनी कलुषता दूर कर अपना हृदय निर्मल कर लिया।

इसी बीच में अर्हद्दत्त सेठ जिनमंदिर में आया तब द्युति आचार्य ने कहा—

"हे भद्र! आज तुमने ऋद्धिधारी महान् मुनियों के दर्शन किये होंगे। वे सर्वजग वंदित महातपस्वी मुनि मथुरा में निवास करते हैं आज मैंने उनके साथ वार्तालाप किया है। उन आकाशगामी ऋषियों के दर्शन से आज तुमने भी अपना जीवन धन्य किया होगा।"

इन आचार्यदेव के मुख से उन साधुओं की प्रशंसा सुनते ही सेठ अर्हद्दत्त खेदखिन्न होकर पश्चात्ताप करने लगा—

"ओह! यथार्थ को नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टि को धिक्कार हो, मेरा आचरण अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक भला और कौन होगा? इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि अन्य कौन होगा? हाय! मैंने उठकर मुनियों की पूजा नहीं की तथा नवधाभक्ति से उन्हें आहार भी नहीं दिया।

साधुरूपं समालोक्य न मुंचत्यासनं तु यः।
दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते।।

दिगम्बर मुनियों को देखकर जो अपना आसन नहीं छोड़ता है—उठकर खड़ा नहीं होता है तथा देखकर भी उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है।

मैं पापी हूँ, पाप कर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पाप का पात्र हूँ अथवा जिनागम की श्रद्धा से दूर निंद्यतम हूँ। जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियों की वंदना नहीं कर लूँगा तब तक मेरा शरीर एवं हृदय झुलसता ही रहेगा। अहंकार से उत्पन्न हुए इस पाप का प्रायश्चित्त उन मुनियों की वंदना के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है।"

(इस कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आकाशगामी मुनि चातुर्मास में भी अन्यत्र जाकर आहार ग्रहण करके आ जाते थे।)

(१९)

शत्रुघ्न के लिए महामुनि का उपदेश

इधर इस मथुरा नगरी में इन मुनियों के चातुर्मास करने से चमरेन्द्र द्वारा किये गये सारे उपद्रव-महामारी आदि नष्ट हो गये थे। नगर में पुनः पूर्ण शांति का वातावरण हो गया था।

इधर अयोध्या से अर्हदत्त सेठ महान वैभव के साथ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन उन ऋषियों की वंदना

करने के लिए पहुँच गये थे। राजा शत्रुघ्न भी इन मुनियों का उपदेश श्रवणकर भक्ति से प्रेरित हुए मथुरा के उद्यान में आ गये थे और उनकी माता सुप्रभा भी विशाल वैभव और धन आदि को लेकर इन मुनियों की पूजा करने के लिए आ गई। उन सम्यग्दृष्टि महापुरुषों ने और सुप्रभा आदि रानियों ने मुनिराज की महान पूजा की। उस समय वहाँ वह उद्यान और मुनियों के आश्रम का स्थान प्याऊ, नाटकशाला, संगीतशाला आदि से सुशोभित हुआ स्वर्गप्रदेश के समान मनोहर हो गया था।

अनन्तर भक्ति एवं हर्ष से भरे हुए शत्रुघ्न ने वर्षायोग को समाप्त करने वाले उन मुनियों को पुनः पुनः नमस्कार करके उनसे आहार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की तब इन सातों में जो प्रमुख थे, वे "सुरमन्यु" महामुनि बोले—

"हे नर श्रेष्ठ! जो आहार मुनियों के लिए संकल्प कर बनाया जाता है दिगम्बर मुनिराज उसे ग्रहण नहीं करते हैं। जो आहार न स्वयं किया गया है न कराया गया है और जिसमें न बनाते हुए को अनुमति दी गई है ऐसे नवकोटि विशुद्ध आहार को ही साधुगण ग्रहण करते हैं।"

पुनः शत्रुघ्न ने निवेदन किया—

"हे भगवन् ! आप भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले हैं। आप अभी कुछ दिन और यहीं मथुरा में ठहरिये। आपके प्रभाव से ही यहाँ महामारी की शांति हुई है....।"

पुनः शत्रुघ्न चिंता करने लगा—

"ऐसे महामुनियों को विधिवत् आहार दान देकर मैं कब संतुष्ट होऊँगा?" शत्रुघ्न को नतमस्तक देखकर उन मुनिराज ने पुनः आगे आने वाले काल का वर्णन करते हुए उपदेश दिया—

"हे राजन् ! जब अनुक्रम से तीर्थंकरों का काल व्यतीत हो जायेगा—पंचम काल आ जाएगा तब यहाँ धर्म कर्म से रहित अत्यन्त भयंकर समय आ जाएगा। दुष्ट पाखण्डी लोगों द्वारा यह परम पावन जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायेगा कि जिस तरह धूलि के छोटे-छोटे कणों द्वारा सूर्य का बिम्ब ढक जाता है। यह संसार चोरों के समान कुकर्मी, क्रूर, दुष्ट, पाखण्डी लोगों से व्याप्त होगा। पुत्र, माता-पिता के प्रति और माता-पिता पुत्रों के प्रति स्नेह रहित होंगे। उस कलिकाल में राजा लोग चोरों के समान धन के अपहर्ता होंगे। कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे फिर भी उनके मन में पाप होगा, वे दुर्गति में ले जाने वाली ऐसी विकथाओं से एक-दूसरे को गोहित करते हुए प्रवृत्ति करेंगे।

हे शत्रुघ्न! कषाय बहुल समय के आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जायेंगे। तीव्र मिथ्यात्व से युक्त मनुष्य व्रतरूप गुणों से सहित एवं दिगम्बर मुद्रा के धारक मुनियों को देखकर ग्लानि करेंगे। अप्रशस्त को प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्बुद्धि लोग भय पक्ष में उस तरह जा पड़ेंगे जिस

तरह के पतंगे अग्नि में जा पड़ते हैं। कितने ही मूढ़ मनुष्य हंसी करते हुए शान्तचित्त मुनियों को तिरस्कृत करके मूढ़ मनुष्यों को आहार देवेंगे। जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तो भी उसमें फल नहीं लग सकता है वैसे ही शील रहित मनुष्यों के लिए दिया हुआ दान भी निरर्थक होता है। 'जो गृहस्थ मुनियों की अवज्ञा कर गृहस्थ के लिए आहार देते हैं वे मूर्ख चंदन को छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करते[१] हैं।

हे शत्रुघ्न! इस प्रकार दुषमता के कारण निकृष्ट काल को आने वाला जानकर तुम आत्मा के लिए हितकर शुभ और स्थायी ऐसा कार्य करो। तुम नामी पुरुष हो अतः निर्ग्रन्थ मुनियों को आहार देने का निश्चय करो यही तुम्हारी धन-संपदा का सार है। हे राजन् ! आगे आने वाले काल में थके हुए मुनियों के लिए आहार देना अपने गृहदान के समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा। इसलिए हे वत्स! तुम ये दान देकर इस समय गृहस्थ के शीलव्रत का नियम धारण करो और जीवन को सार्थक बनाओ। मथुरा के समस्त लोग समीचीन धर्म को धारण करें। दया और वात्सल्य भाव से सम्पन्न तथा जिनशासन की भावना से युक्त होवें। घर-घर में जिनप्रतिमाएं स्थापित की जावें, उनकी पूजाएं हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक

१. अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति।
त्यक्त्वा स चंदनं मूढो गृह्णत्येव विभीतकं।।६७।।

प्रजा का पालन किया जाये।

हे शत्रुघ्न! इस नगरी की चारों दिशाओं में सप्तर्षियों की प्रतिमाएं स्थापित करो, उसी से सब प्रकार की शांति होगी। आज से लेकर जिस घर में जिनप्रतिमा नहीं होगी उस घर को मारी उसी तरह खा जायेगी कि जिस तरह व्याघ्री अनाथ मृग को खा जाती है।[१] जिसके घर में अंगूठा प्रमाण भी जिनप्रतिमा होगी उसके घर में गरुड़ से डरी हुई सर्पिणी के समान मारी का प्रवेश नहीं होगा।"

महामुनि के इस उपदेश को सुनकर हर्ष से युक्त हो राजा शत्रुघ्न ने कहा—

"आपने जैसी आज्ञा दी है वैसा ही हम लोग करेंगे" इत्यादि। इसके बाद वे महामना सातों मुनि आकाश में उड़कर विहार कर गये। वे सप्तर्षि निर्वाण क्षेत्रों की वंदना करके अयोध्या में सीता के घर उतरे। अत्यधिक हर्ष को धारण करने वाली एवं श्रद्धा आदि गुणों से सुशोभित सीता ने उन्हें विधिपूर्वक उत्तम आहार दिया। जानकी के नवधाभक्ति से दिये गये सर्वगुणसम्पन्न आहार को ग्रहण कर उसे शुभाशीर्वाद देकर वे मुनि आकाश मार्ग से चले गये।

१. सप्तर्षि प्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नतः।
नगरयां कुरू शत्रुघ्न! तेन शांतिर्भविष्यति।।७४।।
अद्यप्रभृति यद्गेहे जैनं बिबं न विद्यते।
मारी भक्ष्यति यद्व्याघ्री यथाऽनाथं कुरंगकं।। ७५।। (पद्मपुराण, पर्व ९२)

अनन्तर शत्रुघ्न ने नगर के भीतर और बाहर सर्वत्र जिनेंद्र भगवान की प्रतिमाएं विराजमान करायीं तथा ईतियों को दूर करने वाली सप्तर्षियों की प्रतिमाएं भी चारों दिशाओं में विराजमान करायीं। उस समय वहाँ पर सर्वप्रकार से सुभिक्ष, क्षेम और शांति का साम्राज्य हो गया। तब राजा शत्रुघ्न निर्विघ्नरूप से राज्य का संचालन करते हुए और प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए सुखपूर्वक मथुरा नगरी में रहने लगे।

(२०)

सीता निर्वासन-पुत्र मिलन

श्रीरामचन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। सखियों सहित सीता वहाँ आकर विनय पूर्वक नमस्कार कर यथोचित आसन पर बैठ जाती हैं पुनः निवेदन करती हैं—

"हे नाथ! रात्रि के पिछले प्रहर में आज मैंने दो स्वप्न देखे हैं सो उनका फल आपके श्रीमुख से सुनना चाहती हूँ।"

"कहिए प्रिये! वो स्वप्न कौन-कौन से हैं?" ऐसा राम पूछते हैं।

"प्रथम ही मैंने दो अष्टापद अपने मुख में प्रविष्ट होते देखे हैं। हे नाथ! पुनः मैंने देखा है कि मैं पुष्पक विमान के शिखर से नीचे गिर पड़ी हूँ।"

तब राम कहते हैं—

"हे प्रिये! अष्टापद युगल को देखने से तुम शीघ्र ही युगल पुत्र को प्राप्त करोगी.....।" पुनः राम किंचित् विराम लेते हैं कि सीता संदिग्ध हो पूछती हैं—

"स्वामिन् ! द्वितीय स्वप्न का फल.....।"

"सुन्दरि! यद्यपि पुष्पक विमान से गिरना अच्छा नहीं है फिर भी चिंता की बात नहीं है क्योंकि शांति कर्म तथा दान करने से पाप ग्रह शांति को प्राप्त हो जाते हैं।"

सीता हर्ष एवं विषाद को धारण करती हुई वहाँ से आ जाती हैं और धर्मकार्य में तत्पर हो जाती हैं।

इधर बसंत ऋतु सर्वत्र अपना प्रभाव फैला रही है। कुछ समय बाद सीता को गर्भ के भार से भ्रांत देख रामचन्द्र पूछते हैं—

"हे कांते! तुम्हें क्या अच्छा लगता है? सो कहो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। तुम ऐसी म्लानमुख क्यों हो रही हो?"

सीता कहती है—

"हे नाथ! मैं पृथ्वीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयों के दर्शन करना चाहती हूँ। पंच वर्णमय रत्नों की प्रतिमाओं की वंदना करके रत्न और सुवर्णमयी पुष्पों से उनकी पूजा करना चाहती हूँ। हे देव! इसके सिवाय और मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है।"

इतना सुनते ही रामचन्द्र हर्षितमना द्वारपालिनी को

आदेश दे देते हैं—

"हे कल्याणि! अविलम्ब ही अयोध्या के जिन मंदिरों को एवं निर्वाण क्षेत्रों के जिन मंदिरों को नाना उपकरणों से विभूषित करो और उत्तम पूजन सामग्री तैयार कराओ।"

पुनः श्रीराम सीता के साथ उत्तम हाथी पर सवार हो समस्त परिजनों को साथ लेकर बड़े वैभव के साथ उद्यान में जाते हैं। वहाँ पर सरोवर में चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने हाथों से सुन्दर फूल तोड़कर और दिव्य सामग्री लेकर सीता के साथ मिलकर जिनेन्द्रदेव के बिम्बों की महापूजा करते हैं। आठ हजार रानियों से घिरे राम सर्वत्र पुण्य तीर्थों की वंदना कराते हुए और सीता के साथ जिन पूजा को करते हुए सीता का दोहला पूर्ण करते हैं।

कुछ दिन बाद सीता की दाईं आँख फड़कने से वह चिंतातुर हो उठती हैं। तब गुणमाला आदि रानियाँ उसे शांति विधान आदि कार्यों के लिए प्रेरणा देती हैं। सीता कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहती हैं—

"हे भद्र! आज से प्रत्येक जिनालय में महामहिम पूजन शुरू करा दो और किमिच्छक दान देना प्रारंभ कर दो।"

"जो आज्ञा महारानी जी" ऐसा कहकर वह भद्रकलश कोषाध्यक्ष दूध, दही आदि से श्री जिनदेव का महाभिषेक प्रारंभ करा देता है और दान देना भी शुरू कर देता है।

इधर सीता दान आदि क्रियाओं में आसक्त हैं। उधर द्वारपाल से आज्ञा लेकर अयोध्या के कुछ प्रमुख लोग राज-दरबार में आते हैं। यद्यपि ये लोग रामचन्द्र के तेज के सामने कुछ भी कहने में असमर्थ हो जाते हैं फिर भी बार-बार राम द्वारा सान्त्वना दी जाने पर जैसे-तैसे एक विजय नामक मुखिया हाथ जोड़कर निवेदन करता है-

"हे नाथ! हे पुरुषोत्तम! मेरी कहने की इच्छा व शक्ति न होते हुए भी मैं लाचार हो निवेदन कर रहा हूँ। हे राम! इस समय समस्त प्रजा मर्यादा से रहित हो रही है। तरुण पुरुष किसी की स्त्री का हरण कर लेते हैं पुनः उसके पति उसे वापस लाकर घर में रख लेते हैं और आपका उदाहरण सामने रखते हैं। स्वामिन् ! जिधर देखो उधर एक ही चर्चा सुनने में आती है कि सर्वशास्त्रज्ञ महाविद्वान् महाराजा श्री रामचन्द्र रावण के द्वारा हरी गई सीता को वापस कैसे ले आये? हे देव! यदि आपके राज्य में यह एक दोष न होता तो यह राज्य इन्द्र के साम्राज्य को भी निलंबित कर देता।"

इतना सुनते ही राम अवाक् रह जाते हैं—

'ओह! यह दारुण संकट कैसा?....."

रामचन्द्र प्रजा को सान्त्वना देकर विदा करते हैं और आप स्वयं लक्ष्मण आदि प्रधान पुरुषों को बुला लेते हैं और कहते हैं-

"भाई! सीता के प्रति जनता अपवाद की चर्चा कर रही है। ओह!.....एक ओर लोक निंदा और दूसरी ओर निकाचित स्नेह। भाई! मैं इस समय गहरे संकट में आ फंसा हूँ।"

लक्ष्मण इतना सुनते ही क्रोध से तमतमा उठते हैं—

"अरे! महासती सीता के बारे में कौन अपनी जिह्वा खोल सकता है? मैं उसकी जिह्वा के सौ-सौ टुकड़े कर दूँगा। सीता के प्रति द्वेष करने वालों को मैं आज ही यमराज के मुख में पहुँचा दूँगा।"

रामचन्द्र कहते हैं—

"हे सौम्य! शांत होओ और मेरी बात सुनो! मैं सीता के स्नेह में अपने उज्ज्वल रघुवंश को मलिन नहीं कर सकता हूँ। अतः सीता का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।"

"हे राम! लोकापवाद के भय से आप पवित्र शीलशिरोमणि सीता को न छोड़िये।"

"लक्ष्मण! मैंने जो निर्णय ले लिया वही होगा।"

"भाई! आप यह क्या कह रहे हो?"

इसी बीच राम कृतांतवक्त्र सेनापति को बुलाकर आदेश दे देते हैं—

"सेनापते! तुम शीघ्र ही निर्वाण क्षेत्र की वंदना के बहाने सीता को कहीं घोर महाअटवी में छोड़कर आ जाओ।"

'जो आज्ञा स्वामिन्!" इतना कहकर सेनापति चल

देता है।

अनेक रानियों और सखियों की प्रार्थना को ठुकरा कर सीता यही कहती है—

"बहनों! पतिदेव की यही आज्ञा है कि मैं अकेली ही तीर्थवंदना के लिए जाऊँ अतः तुम सब क्षमा करो और वापस जाओ।"

सिद्धों को नमस्कार कर सीता रथ में बैठ जाती हैं और रथ द्रुतगति से चल पड़ता है। मार्ग में कुछ क्षेत्रों की वंदना कराकर सेनापति निर्जन वन में रथ लेकर पहुँचता है और वहाँ पर उतर कर आँखों से अविरल अश्रु धारा की वर्षा करते हुए कहता है—

"हे स्वामिनि! चूँकि आप रावण द्वारा हरी गई थीं इस कारण लोग आपका अवर्णवाद कर रहे हैं। यह बात रामचन्द्र को विदित हो चुकी है अतः अपकीर्ति के डर से उन्होंने दोहलापूर्ति के बहाने तुम्हें यहाँ निर्जन वन में छोड़ आने को मुझे आदेश दिया है।

इतना सुनते ही सीता अकस्मात् शोक से मूर्च्छित हो जाती है। होश आने पर कहती है-

"हे सेनापते! तुम मुझे कुछ पूछने के लिए एक बार श्री राम का दर्शन करा दो।"

"हे देवि! मुझे बस इतनी ही आज्ञा है। अब मैं कुछ भी

करने में असमर्थ हूँ। हाय! इस किंकरता को धिक्कार हो! सौ-सौ बार धिक्कार हो जो कि मुझे आज यह अधर्म कार्य करने का अवसर आया है।"

पुनः रोते हुए टूटे-फूटे अक्षरों में सीता कहती है—

"हे सेनापते! तुम जाकर श्रीराम से मेरा एक समाचार अवश्य कह देना कि जैसे आपने लोकापवाद के डर से मुझे छोड़ दिया है वैसे ही सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को, जैन धर्म को न छोड़ देना।"

इधर सेनापति नमस्कार कर चला जाता है। उधर सीता करुण क्रंदन करते हुए विलाप करती है—

"हे देव! आपने मुझे धोखा क्यों दिया?

अरे दुर्दैव! तुझे मेरी दशा पर दया नहीं आई? ओह! मैंने पूर्वजन्म में क्या पाप किया था? क्या किसी मुनि को झूठा दोष लगाया था?.....हाय मातः! यह क्या हुआ? मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? किसकी शरण लूँ? हे नाथ! आप कैसे निष्ठुर हो गये? ऐसा ही करना था तो आपने युद्ध में असंख्य प्राणियों का संहार कर मेरी रक्षा क्यों की थी?.....अरे भक्त लक्ष्मण! हे मात अपराजिते! हे भाई भामंडल! हे पुत्र हनुमान! तुम सब आज ऐसे कैसे हो गये हो? ओह! विधाता तू कितना निष्ठुर है.....?"

उधर कृतांतवक्त्र के समाचार से रामचन्द्र एक बार

आहत हो उठते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं पुनः सचेत हो कुछ संतोष को धारण करते हुए अपने राज कार्य में लग जाते हैं।

अकस्मात् राजा वज्रजंघ के कुछ लोग सीता के सामने आकर पूछते हैं—

"हे देवि! आप कौन हो? और यहाँ ऐसी अवस्था में क्यों बैठी हो?"

उन्हें देखते ही सीता घबराकर उन्हें अपने आभूषण देने लगती है। इसी बीच राजा वज्रजंघ आ जाते हैं और पूछते हैं—

"हे भगिनि! तुम कौन हो? किस निर्दयी ने तुम्हें यह वन दिखाया है? डरो मत, कहो, कहो। मैं तुम्हारा भाई हूँ।"

सीता अश्रु रोककर कहती है—

"हे भाई! मैं राजा जनक की पुत्री, भामंडल की बहन, राजा दशरथ की पुत्रवधू और श्रीरामचन्द्र की रानी सीता हूँ।"

पुनः धीरे-धीरे वह दशरथ की दीक्षा से लेकर अपने दोहदपूर्ति तक सारे समाचार सुना देती है। राजा वज्रजंघ कहते हैं—

"बहन! संसार में कर्मों की ऐसी ही विचित्र गति है अतः धैर्य धारण करो और मेरे साथ चलो, तुम मेरी धर्म बहन हो।"

"हाँ! तुम मेरे भाई हो, सच में तुम पूर्वभव में मेरे भाई

रहे होंगे अन्यथा इस निर्जन वन में मेरे सहायक कैसे बनते?"

वज्रजंघ सीता को साथ लेकर पुण्डरीकपुर में आ जाते हैं। कुछ ही दिनों में श्रावणमास की पूर्णिमा के दिन सीता युगल पुत्रों को जन्म देती है। उनके नाम अनंगलवण और मदनाँकुश रखे जाते हैं। वे बालक दूज के चन्द्रमा की तरह कला, गुण और शरीर से बढ़ते हुए सीता के शोक को भुला देते हैं। एक समय 'सिद्धार्थ' नामक क्षुल्लक राजा वज्रजंघ के यहाँ आते हैं। वे इन दोनों बालकों को समस्त शास्त्र और शस्त्र कला में निष्णात कर देते हैं। वे क्षुल्लक प्रतिदिन तीनों कालों में मेरुपर्वत की वंदना करते रहते हैं। दोनों भाई लवण और अंकुश सूर्य के तेज और प्रताप को भी लज्जित करते हुए यौवन अवस्था में प्रवेश करते हैं।

एक बार पृथिवीपुर के राजा पृथु के दरबार में दूत प्रवेश करता है और आज्ञा पाकर निवेदन करता है—

"महाराज"! राजा वज्रजंघ ने सीता के पुत्र लवण को अपनी पुत्री शशिचूला देना निश्चित किया है अब वे अंकुश के लिए आपकी पुत्री कनकमाला को चाहते हैं, क्योंकि वे दोनों का विवाह एक साथ.....।"

बीच में ही बात काटकर राजा पृथु कहते हैं—

"अरे दूत! चुप रह। वर के नव गुण कहे हैं-कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्या।

इनमें से सर्वप्रथम कुल गुण ही प्रधान है और जिसमें वह नहीं है उसे अपनी कन्या देना भला कैसे संभव है?"

दूत वापस जाकर राजा वज्रजंघ को सर्व समाचार दे देता है। राजा वज्रजंघ पृथिवीपुर पर चढ़ाई करके उसे घेर लेते हैं। समाचार विदित होते ही लव-कुश भी आ जाते हैं और युद्ध में ललकार कर कहते हैं-

"अरे पृथु! ठहर, क्यों भागता है? आज हम दोनों तुझे युद्ध में ही अपने कुल का परिचय करायेंगे।"

पृथु वापस मुड़कर क्षमा याचना करते हुए उन दोनों की प्रशंसा करते हैं और सम्मान के साथ नगर में प्रवेश कराते हैं।

अनंतर राजा पृथु की पुत्री और तमाम सेना प्राप्त कर ये वीर अन्य तमाम देशों को जीतने के लिए निकल पड़ते हैं। कुछ दिनों बाद दिग्विजय करके आते हुए वीर पुत्रों को देखकर वीरसू माता सीता हर्ष से फूल जाती हैं। इधर वज्रजंघ भी अपनी पुत्रियों का विवाह वीर लवण के साथ सम्पन्न कर देते हैं।

(२१)

रत्नजटित सिंहासन पर लव-कुश विराजमान हैं। नारद प्रवेश करते हैं, देखते ही दोनों वीर उठकर खड़े होकर विनय सहित घुटने टेक कर उन्हें नमस्कार कर उच्च आसन प्रदान करते हैं। प्रसन्न मुद्रा में स्थित नारद कहते हैं—

"राजा राम और लक्ष्मण का जैसा वैभव है सर्वथा

वैसा ही वैभव आप दोनों को शीघ्र ही प्राप्त हो।"

वे वीर पूछते हैं—

"भगवन् ! ये राम-लक्ष्मण कौन हैं? वे किस कुल में उत्पन्न हुए हैं?"

आश्चर्यमय मुद्रा को करते हुए कुछ क्षण स्तब्ध रहकर नारद कहते हैं—

"अहो! मनुष्य भुजाओं से मेरु को उठा सकता है, समुद्र को तैर सकता है किन्तु इन दोनों के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता है। यह सारा संसार अनंतकाल तक अनंत जिह्वाओं के द्वारा भी उनके गुणों को कहने में समर्थ नहीं है। फिर भी मैं उसका नाममात्र ही तुम्हें बता देता हूँ। सुनो, अयोध्या के इक्ष्वाकुवंश के चन्द्रमा दशरथ के पुत्र श्री राम और लक्ष्मण हैं।...दशरथ की दीक्षा के बाद भरत का राज्याभिषेक होता है और राम-लक्ष्मण, सीता वन को चले जाते हैं। वहाँ रावण सीता को हर ले जाता है पुनः रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव आदि के साथ रावण को मार कर सीता वापस ले आते हैं। अयोध्या में आकर पुनः राज्य-संचालन करते हैं।

श्रीराम के पास सुदर्शन चक्र है तथा और भी अनेक रत्न हैं जिन सबकी एक-एक हजार देव सदा रक्षा करते रहते हैं। उन्होंने प्रजा के हित के लिए सीता का परित्याग कर दिया है

ऐसे राम को इस संसार में भला कौन नहीं जानता है?"

यह सब सुनकर अंकुश पूछता है—

"हे ऋषे! राम ने सीता किस कारण छोड़ी सो तो कहो, मैं जानना चाहता हूँ।"

नारद एक क्षण आकुल हो उठते हैं पुनः अश्रुपूर्ण नेत्र होकर कहते हैं—

"जो जिनवाणी के समान पवित्र हैं ऐसी सीता का पता नहीं किस जन्म के पाप का उदय हो आया कि जनता के मुख से उसका अपवाद सुन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने गर्भवती अवस्था में ही उसे वन में भेज दिया। ओह!...पता नहीं आज वह जीवित है या नहीं?....."

इतना कहते हुए नारद का कंठ रुंध जाता है और वो आगे बोल नहीं पाते हैं। पुनः हँसते हुए अंकुश कहते हैं—

"हे ब्रह्मचारिन् ! भयंकर वन में सीता को छोड़ते हुए राम ने कुल के अनुरूप कार्य नहीं किया। अहो! लोकापवाद के निराकरण के अनेक उपाय हो सकते हैं पुनः उन्होंने सीता को ऐसा कष्ट क्यों दिया?" लवण कुमार पूछते हैं—

"हे मुने! कहो अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है।"

"अयोध्या यहाँ से ६० योजन दूर है।"

"ठीक है, हम राम-लक्ष्मण को जीतने के लिए प्रस्थान करेंगे।"

लव-कुश राजा वज्रजंघ से कहकर सिंधु, कलिंग आदि देश में दूत भेजकर राजाओं को बुलाकर प्रस्थान की भेरी बजवा देते हैं। राम के प्रति चढ़ाई सुन सीता रोने लगती है। यह देख सिद्धार्थ क्षुल्लक कहते हैं—

"नारद ऋषे! आपने यह क्या किया? ओह! आपने कुटुम्ब में ही भेद डाल दिया।" नारद कहने लगे—

"मैंने तो मात्र राम-लक्ष्मण की चर्चा की थी।....फिर भी डरो मत, कुछ भी बुरा नहीं होगा।"

दोनों वीर माता को रोती हुई देखकर पूछते हैं—

"हे अम्ब! क्यों रो रही हो? अविलम्ब कहो, किसने तुम्हें शोक उत्पन्न कराया है? कौन यमराज का ग्रास बनना चाहता है?"

सीता धैर्य का अवलम्बन लेकर कहती है—

"पुत्रों! आज मुझे तुम्हारे पिता का स्मरण हो आया है इसलिए अश्रु आ गये हैं।"

आश्चर्य चकित हो दोनों बालक पूछते हैं—

"मातः! हमारे पिता कौन हैं? और वे कहाँ हैं?"

तब सीता सोचती है अब रहस्य छिपाने का समय नहीं है और वह स्पष्टतया कहती है—

"प्यारे बेटे! ये राम ही तुम्हारे पिता हैं और वह सीता मैं ही हूँ। राजा वज्रजंघ भामंडल के समान मेरा बंधु हुआ है

और मेरे गर्भ से तुम दोनों वीर जन्मे हो। आज तुम्हारी रणभेरी सुन कर मैं घबरा रही हूँ। बेटे! क्या मैं पति की अमंगलवार्ता सुनूँगी? या तुम्हारी? या देवर की?....."

सर्व वृत्तांत सुनकर लव-कुश के हर्ष का पार नहीं रहता है। वे कहने लगते हैं—

"अहो! तीन खण्ड के स्वामी बलभद्र श्रीरामचन्द्र के हम सुपुत्र हैं।" पुनः माता से कहते हैं—

"मातः! मैं वन में छोड़ी गई हूँ" तुम ऐसा विषाद अब मत करो। तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मण का अहंकार खण्डित देखो।"

सीता विह्वल हो कहती है—

"प्यारे पुत्रों! पिता के साथ विरोध करना ठीक नहीं है अतः तुम दोनों बहुत ही विनय के साथ जाकर उनका दर्शन करो, यही बात न्यायसंगत है।"

दोनों वीर कहते हैं—

"हे मातः! आज वे हमारे शत्रुस्थान को प्राप्त हैं उन्होंने अकारण ही आपका तिरस्कार किया है अतः हम उनसे यह दीन वचन नहीं कह सकते हैं कि हम आपके पुत्र हैं। अब तो संग्राम में ही परिचय होगा। संग्राम में ही हम लोगों को मरण भी इष्ट है किन्तु माता के अपमान को सहन कर जीवित रहना हमें इष्ट नहीं है।"

सीता और सिद्धार्थ उन पुत्रों को तरह-तरह से समझा रहे हैं किन्तु वे युद्ध के लिए कमर कस चुके हैं। सिद्धों की पूजा कर माता को सान्त्वना देते हुए नमस्कार करते हैं—

"बेटे! जिनेन्द्रदेव सर्वथा तुम्हारी रक्षा करें और परस्पर में मंगलक्षेम होवे।"

माता के शुभाशीष को प्राप्त कर वे प्रस्थान कर देते हैं। इधर सिद्धार्थ और नारद शीघ्र ही भामण्डल को खबर भेज देते हैं। राजा जनक के साथ भामण्डल वहाँ आते हैं। कंठ फाड़-फाड़कर रोती हुई सीता को सान्त्वना देकर विमान में बिठाकर युद्ध स्थल में आते हैं। आकाश मार्ग में विमान को ठहरा कर दोनों का संग्राम देख रहे हैं। हनुमान को भेद मालूम होते ही वह भी लव-कुश की सेना में आ जाता है।

आपस में दिव्य शस्त्रों द्वारा घोर युद्ध चल रहा है। राम के साथ लवण कुमार और लक्ष्मण के साथ अंकुश भिड़े हुए हैं। एक दूसरे को ललकार रहे हैं। रामचन्द्र कभी पराजित होते हैं तो लज्जित हो जाते हैं, हँसकर पुनः शस्त्र प्रहार करते हैं। इधर लव-कुश जानते हैं कि ये मेरे पिता और चाचा हैं अतः संभव कर प्रहार करते हैं किन्तु राम-लक्ष्मण को विदित न होने से वे शत्रु मानकर ही प्रहार कर रहे हैं—

राम-लक्ष्मण सोच रहे हैं—

"क्या कारण है? कि जो मेरे अस्त्र-शस्त्र निष्फल ही

होते जा रहे हैं और शरीर में भी शिथिलता आ रही है?"

"क्या कहूँ भाई? मेरी भी यही स्थिति है कुछ समझ में नहीं आता है कि क्या करना है?"

पुनः कुछ सोचकर युद्ध का अंत करने के लिए लक्ष्मण चक्ररत्न का स्मरण करते हैं और उसे घुमाकर अंकुश के ऊपर छोड़ देते हैं। वह अंकुश के पास पहुँचकर निष्प्रभ हो जाता है पुनः वापस लक्ष्मण के हस्ततल में आ जाता है। कई बार चक्ररत्न का वार होने पर भी जब वह निष्फल हो जाता है तब इधर अंकुश कुमार अपने धनुष दण्ड को ऐसा घुमाते हैं कि वह चक्र की शंका उत्पन्न कर देता है। राम-लक्ष्मण कहने लगते हैं—

"क्या बात है? केवली भगवान् के वचन असत्य हो जायेंगे क्या? जान पड़ता है कि ये दोनों दूसरे ही बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए हैं।"

लक्ष्मण को लज्जित और निश्चेष्ट देख नारद की सम्मति से सिद्धार्थ क्षुल्लक वहाँ आकर कहते हैं—

"हे देव! नारायण तो तुम्हीं हो, जिन शासन की कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है? भाई! ये दोनों कुमार सीता के लव-कुश नाम के दो पुत्र हैं कि जिनके गर्भ में रहते हुए उसे वन में छोड़ दिया गया था।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण के हाथ से शस्त्र और कवच

गिर जाते हैं और राम तो धड़ाम से पृथ्वी तल पर गिर मूर्च्छित हो जाते हैं। शीतोपचार से सचेत होते ही राम-लक्ष्मण पुत्रों से मिलने के लिए आगे बढ़ते हैं। उधर लव-कुश भी रथ से उतर कर पिता के सम्मुख बढ़ते हैं। दोनों ही वीर पिता के चरणों में गिर नमस्कार करते हैं और श्रीराम अपनी भुजाओं से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मण भी उनका आलिंगन करते हैं। भामण्डल भी उन्हें छाती से चिपकाकर मस्तक पर हाथ फिराते हैं। वहीं युद्ध स्थल में ही पिता-पुत्र के मिलन की प्रसन्नता में मंगलबाजों की ध्वनि होने लगती है। पिता-पुत्र का मिलन होते ही सीता संतुष्टचित्त हुई अपनी पुत्र-वधुओं के साथ पुण्डरीकपुर चली जाती है। रामचन्द्र दोनों पुत्रों और भाई के साथ अपने पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं उस समय के दृश्य को देखने के लिए वहाँ की प्रजा, महिलाएं और बालक-बालिकाएं तो पागलवत् चेष्टा करते ही हैं आश्चर्य यह कि वृद्ध लोग भी धक्का-मुक्की को सहन करते हुए प्राणों की परवाह न करके उनके दर्शनों के लिए पागल हो जाते हैं।

कोई महिला आँख का अंजन ललाट में लगाकर दौड़ आती है तो कोई दुपट्टी को पहन कर और लहँगा को ओढ़कर चल देती है। कोई अपने बच्चे को छोड़कर किसी अन्य के बालक को ही लेकर चल पड़ती है, तो कोई पति को आधा

भोजन परोस कर ही भाग आती है। हल्ला-गुल्ला से उत्पन्न हुआ शब्द भूतल और आकाश मंडल को एक कर देता है।

"अरे वृद्धे! हट, हट, मुझे भी देखने दे। तू यहाँ से चली जा अन्यथा गिरकर मर जायेगी।"

"अरे, रे, रे! मातः! मैं गिर गई, कोई मुझे सहारा दे दो।"

"सरको, सरको, जरा दूर हटो, मुझे भी देखने दो।"

"हाँ, हाँ देखो, जो ये रामचन्द्र जी के अगल-बगल में बैठे हैं वे ही सीता के पुत्र लव-कुश हैं।"

"बहन! कौन तो लव है और कौन कुश है? दोनों तो एक सरीखे हैं।"

"बहन! देखो ना, इन दोनों का मुख कमल श्रीरामचन्द्र जैसा ही है।"

"हाँ बहन देखो, इतना भयंकर युद्ध करने के बाद भी दोनों अक्षत शरीर हैं। बड़े पुण्यशाली हैं ये।"

"ओहो! कितने सुन्दर हैं ये बालक।"

"कहीं इन्हें नजर न लग जाये, अतः इनके ऊपर ये सरसों के दाने बिखेर दे।"

"अरी माँ! तू यहाँ भीड़ में क्यों आ गई? क्या मरना है?"

"अरी बेटी! मुझे भी जरा देख लेने दे।"

"हाँ, हाँ ले आजा, मैंने तो दर्शन कर लिये।"

"अरी सखी! मैं एक बार इन दोनों का चेहरा और देख लूँ।"

"अरी पगली! तू तो बहुत देर से देख रही है। अब दूसरों को भी दर्शन कर लेने दे।"

रामचन्द्र-महल में पहुँचकर स्नान आदि से निवृत्त हो दोनों पुत्रों के साथ भोजन करते हैं। पुनः राजा वज्रजंघ को बुलाकर सम्मानपूर्वक कहते हैं—

"आप मेरे लिए भामण्डल के समान हैं। अहो! संकट में सती सीता के भाई बनकर आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है कि जिससे इन पुत्रों के मुख कमल को मैं देख सका हूँ।"

अयोध्या में सर्वत्र खुशियाँ मनाई जा रही हैं। मंगलवाद्य, तोरण, बंदनवार और फूलों से अयोध्या एक अपूर्व ही शोभा को धारण कर रही है।

(२२)

अग्नि परीक्षा

श्री रामचन्द्र अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। सुग्रीव, हनुमान, विभीषण आदि आकर नमस्कार कर निवेदन करते हैं—

"प्रभो! सीता अन्य देश में स्थित है उसे यहाँ लाने की आज्ञा दीजिए।" रामचन्द्र गर्म निःश्वास लेकर कहते हैं—

"बंधुओं! यद्यपि मैं उसके विशुद्ध शील को जानता हूँ फिर भी लोकापवाद से त्यक्त हुई सीता का मुख मैं कैसे देख सकूँगा?

हाँ, यदि वह अपने सतीत्व का विश्वास जनता को करा सके तो आप ला सकते हैं।"

राम की आज्ञा पाते ही हनुमान आदि पुंडरीकपुर पहुँचकर सीता के महल में प्रवेश करते हैं। पुष्पांजलि बिखेर कर सीता को प्रणाम कर वार्तालाप करते हैं। सीता रो पड़ती हैं और कहती हैं—

"दुर्जनों के वचन रूपी दावानल से जले हुए मेरे अंग इस समय क्षीरसागर के जल से भी शांत नहीं हो रहे हैं।"

"हे मनस्विनि! हे भगवति! आप शोक छोड़ो और मन को प्रकृतिस्थ करो। हम लोगों ने ऐसा कह रखा है कि भरत क्षेत्र में जो भी सीता की निंदा करे उसे मार डाला जाये और जो सीता के गुणों का कीर्तन करे उसके घर रत्न वर्षा की जाये। हे देवि! कृषक भी धान्य राशि में आपकी स्थापना करते हैं उनका कहना है कि इससे धान्य अधिक पैदा होता है।"

पुनः हनुमान कहते हैं—

"हे वैदेहि! यह पुष्पक विमान श्रीराम ने भेजा है अतः अब पति की आज्ञा का पालन करो, उठो और शीघ्र ही अयोध्या चलो।"

सीता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान कर देती हैं। अयोध्या में प्रवेश करते ही जय-जयकार और प्रशंसा को सुनते हुए वे राजभवन में प्रवेश

करती हैं। श्रीराम को नमस्कार कर पास में खड़ी हो जाती हैं। उस समय राम सोचते हैं—

"अहो! यह कैसी धृष्टा है कि जो वन में छोड़ी जाने पर भी आज यहाँ आकर मेरे सन्मुख खड़ी है। यह बड़ी निर्लज्ज है।" पुनः कहते हैं—

"हे सीते! सामने क्यों खड़ी है? दूर हट, मैं तुझे देखने को समर्थ नहीं हूँ। तू रावण के भवन में कई मास तक रही फिर भी तुझे ले आया, क्या यह सब मेरे लिए उचित था?"

"हे राम! आपके सदृश निष्ठुर दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार कोई साधारण मनुष्य उत्तम विद्या का तिरस्कार करता है। वैसे ही आप मेरा तिरस्कार कर रहे हो। हे कुटिल हृदय! दोहला के बहाने वन में भेजकर मुझ गर्भिणी का छोड़ना क्या तुम्हें उचित था? यदि मैं वहाँ कुमरण को प्राप्त होती तो इससे तुम्हें क्या लाभ मिलता? केवल मेरी दुर्गति ही तो होती? यदि मेरे प्रति आपका किंचित् भी सद्भाव था तो मुझे आर्यिकाओं की वसतिका के पास क्यों नहीं छुड़वाया था? वास्तव में अनाथ और अत्यन्त दुःखी को एक जिन-शासन ही परम शरण है। हे देव! अधिक कहने से क्या? इस दशा में भी आप प्रसन्न होइए, मुझे आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ?...."

इतना कहकर सीता रो पड़ती है। तब राम शांतचित्त हो कहते हैं—

"हे देवि! मैं तुम्हारे निर्दोष शील को जानता हूं फिर भी तुम लोकापवाद को प्राप्त हुई हो अतः इस कुटिलचित्त प्रजा को विश्वास दिलाओ।"

"ठीक है, मैं पाँच प्रकार की दिव्य शपथों में से आप जो कहिए उसे देने के लिए तैयार हूँ। हे राम! मैं कालकूट विष को पी सकती हूँ, मैं तुला पर चढ़ सकती हूँ, अथवा अग्नि में प्रवेश कर सकती हूँ।"

कुछ क्षण राम विचार कर कहते हैं—

"हाँ, ठीक है, अग्नि में प्रवेश करो।"

सीता प्रसन्न हो कहती हैं—

"ठीक है, मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।"

इतना सुनते ही हनुमान, विभीषण, लव-कुश आदि काँप उठते हैं। लव कहता है-

"ओह! माता ने मृत्यु स्वीकार कर ली है।" कुश कहता है—"भाई! जो गति माता की होगी वही अपनी होगी।"

उस समय सिद्धार्थ क्षुल्लक अपनी भुजा ऊपर उठाकर श्रीराम से कहते हैं—

"हे राम! मेरु पाताल में प्रवेश कर सकता है, समुद्र सूख सकते हैं किन्तु सीता के शील में कुछ भी चंचलता नहीं आ सकती है। मैं विद्याबल से समृद्ध हूँ तीनों काल में मेरु की वंदना करके आता हूँ। पाँचों मेरुओं के समस्त शाश्वत जिन

प्रतिमाओं की मैंने वंदना की है। हे रामचन्द्र! मैं जोर देकर कहता हूँ कि सीता के शील में किंचित् भी कमी हो तो वह मेरी वंदना निष्फल हो जाये। मैंने वस्त्रखंड धारण कर कई हजार वर्ष तक तपश्चरण किया है सो मैं उस तप की शपथ पूर्वक कहता हूँ कि ये दोनों कुमार तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसलिए हे बुद्धिमन् राम! इस भयंकर अग्नि में सीता को प्रवेश न कराइये।"

क्षुल्लक की बात सुनकर आकाश में स्थित विद्याधर और भूमिगोचरी राजा लोग जोर-जोर से आवाज लगाते हुए कहने लगे—

"बहुत अच्छा कहा, बहुत अच्छा कहा, हे देव! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, हे नाथ! हे राम! हे राम! सीता महासती, महासती है आप मन में भी अग्नि का विचार मत करो।"

उस समय तीव्र शोक से सभी लोग जोर-जोर से रोने लगते हैं—

तब राम सबकी उपेक्षा करते हुए कहते हैं—

"हे मानवों! यदि इस समय आप लोग दया करने में तत्पर हैं तो पहले अपवाद क्यों किया था?"

उसी समय राम किंकरों को आज्ञा दे देते हैं। सेवकगण दो पुरुष प्रमाण गहरी और तीन सौ हाथ प्रमाण चौड़ी चौकोर बावड़ी खोद कर उसमें अगुरु, चंदन आदि की बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ लेकर भर देते हैं और अग्नि प्रज्ज्वलित कर देते

हैं। अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को देखकर सारी अयोध्यापुरी ही अश्रुओं की वर्षा से दुर्दिन उपस्थित कर देती है।

श्रीराम अग्नि की लपटों को देखकर व्याकुल हो उठते हैं और सोचने लगते हैं-

"ओह! मैंने यह क्या कर डाला? यह मालती के पुष्प सदृश कोमलांगी अग्नि का स्पर्श होते ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी। हाय! पुनः गुणों की पुंज शील शिरोमणि इस कांता का मुख कमल मैं कैसे देख सकूँगा? इसके वियोग में मैं अब कैसे जीवित रह सकूँगा? निश्चिन्त हृदया सीता ने भी ऐसे मरना कैसे स्वीकृत कर लिया है? ओह!....वह क्षुल्लक भी अब चुपचाप है अतः इसे रोकने के लिए अब मैं क्या बहाना करूँ?....." पुनः सोचते हैं-

"अथवा जिनका जैसा मरण निश्चित है वैसा ही होगा। उसे अन्यथा करने में कौन समर्थ है?" पुनः उठती हुई ज्वालाओं की भीषण गर्मी को देखते हुए सोच रहे हैं—

"अरे! दुष्ट रावण ने इसे लंका में मृत्यु के घाट क्यों नहीं उतार दिया था?.....जब वन में छोड़ी गई थी तभी इसे किसी हिंसक पशु ने क्यों नहीं खा लिया था?....अब मैं इसकी ऐसी दशा कैसे देख सकूँगा?....."

राम चिंतातुर हो रहे हैं। लक्ष्मण, हनुमान आदि अश्रु

की बूँदें गिरा रहे हैं। लव-कुश मूर्च्छित हो-होकर गिर रहे हैं किन्तु सीता किसी की परवाह न कर वहाँ आती हैं और प्रसन्नमना हुई खड़ी हो जाती हैं। क्षणभर के लिए कायोत्सर्ग करती हैं पुनः श्री जिनेन्द्रदेव की स्तुति करती हैं—

"ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों को मेरा नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, श्री मुनिसुव्रतनाथ को बारम्बार नमस्कार हो, सर्वजन हितैषी, प्राणिवत्सल आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।"

पुनः श्री रामचन्द्र को नमस्कार करके कहती हैं—

"हे अग्निदेवते! राम के सिवाय यदि स्वप्न में भी मैंने किसी अन्य पुरुष को मन से भी चाहा हो तो तू मुझे भस्मसात् कर दे अन्यथा तू शीतल हो जा।"

इतना कह कर वह उस अग्नि कुंड में कूद पड़ती है। इसी बीच सर्वत्र हाहाकार मच जाता है।

"अरे रे रे! क्या हुआ? क्या हुआ? हे जिनशासन देवते।".....इसी बीच वहीं अयोध्या के महेंद्रोदय उद्यान में सकलभूषण केवली के केवलज्ञान उत्सव को मनाने के लिए इन्द्रगण आ रहे थे। इस दृश्य को देखते ही इन्द्र ने मेषकेतु देव को कहा कि—

"जाओ, जाओ! शीघ्र ही शील का माहात्म्य दिखाकर सीता की रक्षा करो।"

वह देव निमिष मात्र में उस अग्नि की बावड़ी को जल से लबालब भर देता है। जल बावड़ी से ऊपर आकर चारों तरफ फैल जाता है। लोग डूबने लगते हैं। उधर सीता जल के मध्य सहस्र-दल कमल के ऊपर सिंहासन में विराजमान हैं। जल बढ़ता ही चला जा रहा है। लोग जोर-जोर से आवाज लगाते हैं—

"हे देवि! रक्षा करो, रक्षा करो। हे मान्ये! हे सरस्वती! हे महाकल्याणि! हे लक्ष्मी! हे सर्वप्राणिहितैषिणि! रक्षा करो। हे महा पतिव्रते! हे मुनि मानस निर्मले! दया करो, दया करो!

वह जलरूपी वधू जब अपने तरंगरूपी हाथों से श्रीराम के चरण युगल का स्पर्श कर लेती है तब वह उसी क्षण सौम्य दशा को प्राप्त हो जाती है। तब जल को रुका हुआ देख सभी जनता सुखी हो जाती है। उस बावड़ी में चारों तरफ कमल खिल रहे हैं। सीता के दोनों तरफ देवियाँ चंवर ढोर रही हैं। महिलाएँ सीता के शील की प्रशंसा करते हुए और तरह-तरह से आशीर्वाद देते हुए नहीं अघाती हैं। देवतागण दुंदुभि बाजे बजा रहे हैं, पुष्प वर्षा रहे हैं। किन्नरियाँ नृत्य कर रही हैं और मधुर गीत गा रही हैं। आकाश से, भूतल से सब ओर से एक ही ध्वनि आ रही है-

"हे जनकनंदिनी, हे शीलशिरोमणि! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे बलभद्र श्रीराम की पट्टरानी! तुम्हारी जय हो, जय हो।"

माता के स्नेह से खिंचे हुए लव-कुश जल में तैरते हुए वहाँ आकर सीता को प्रणाम करते हैं। वह बेटों के मस्तक पर हाथ फिराकर अनेक आशीर्वाद देती हैं पुनः दोनों पुत्र सीता के आजू-बाजू में खड़े हो जाते हैं। उसी समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बहुत भारी अनुराग से युक्त हो सीता के समीप आते हैं और कहते हैं—

"हे देवि! प्रसन्न होओ, तुम सभी लोक में पूजित कल्याणवती हो। हे सति! मेरा सब दोष क्षमा करो, पुनः आगे फिर कभी भी मैं ऐसा अपराध नहीं करूँगा। हे प्राणवल्लभे! तुम आठ हजार रानियों की भी परमेश्वरी हो और तो क्या अब मुझ पर भी तुम अनुशासन करो। हे कान्ते! जो-जो स्थान तुम्हें प्रिय हों मुझे आज्ञा देवो, मैं तुम्हारे साथ वहाँ-वहाँ विचरण करते हुए इच्छानुसार क्रीड़ा करूँगा। हे प्रशंसनीय मनस्विनि! मैं इस समय दोष सागर में निमग्न हूँ अतः तुम्हारे समीप आया हूँ सो क्रोध का परित्याग करो और प्रसन्न होओ।"

तब सीता कहती हैं—

"हे नाथ! आप इस तरह विषाद क्यों कर रहे हैं? मैं किसी पर भी कुपित नहीं हूँ। इसमें न तुम्हारा ही कुछ दोष था न देश के अन्य लोगों का। यह तो मेरे पूर्व संचित कर्म का ही विपाक था जो मैंने भोगा है। हे बलदेव! मैंने तुम्हारे प्रसाद से देवों के समान अनुपम भोग भोगे हैं। इसलिए अब उनकी

इच्छा नहीं है। अब तो मैं वहीं कार्य करूँगी कि जिससे पुनः मुझे स्त्री पर्याय प्राप्त न हो। अब मैं समस्त दुःखों का क्षय करने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करूँगी.....।"

इतना कहते हुए सीता कोमल हाथों से अपने काले-काले केश उखाड़कर राम के सम्मुख डाल देती हैं। उन केशों को देख रामचन्द्र धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। जब तक रामचन्द्र सचेत हों तब तक सीता शीघ्र ही उद्यान में जाकर सकलभूषण केवली यहाँ पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले लेती हैं।

इधर रामचन्द्र शीतोपचार से जब होश में आते हैं तब वे मोह और शोक में पागल हो बकने लगते हैं—

"ओह! मेरी प्राण वल्लभा सीता कहाँ गई? यदि उसे दीक्षा ही दिलाना था तो देवों ने ऐसा उसका प्रातिहार्य क्यों किया? मैं देखता हूँ उसे कौन ले जाता है? मैं देवों को भी अदेव कर दूँगा।"

उस समय लक्ष्मण उन्हें संभाल कर अनेक उपाय से सांत्वना दे रहे हैं। पुनः सभी लोग महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँचते हैं। वहाँ सर्वभूषण केवली के समवसरण में प्रवेश कर शांत हो जाते हैं। वंदना, पूजा, स्तुति करके सीता को भी नमस्कार कर सब अपने-अपने कोठे में बैठ जाते हैं। तब 'अभयनिनाद' नामक महामुनि भगवान् से प्रश्न करते हैं—

"हे भगवन् ! संसार में यह जीव क्यों भ्रमण कर रहा है?"

"हे भव्यजीवों! संसार का मूल कारण मोह ही है जब तक यह जीव इसके वश में है तभी तक संसार है।"

इत्यादि प्रकार से दिव्य उपदेश सुनकर सभी लोग अपने-अपने भव-भवान्तर पूछते हैं। अनन्तर कृतांतवक्त्र सेनापति श्रीराम से कहता है—

'हे नाथ! अब मैं इस अनादि संसार से निकलना चाहता हूँ। अतः मुझे दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान कीजिए।'

रामचन्द्र अनेक उपायों से भी जब उसे नहीं रोक पाते हैं। तब कहते हैं—

"भद्र! यदि तुम इस जन्म से निर्वाण प्राप्त न कर सको और देव होवो तो जब कभी मैं संकट में होऊँ तो मुझे सम्बोधन अवश्य करना। यदि तुम मेरा किंचित् भी उपकार मानते हो तो यह प्रतिज्ञा करो।"

"जैसी आपकी आज्ञा, मुझे यह सहर्ष स्वीकृत है।"

इतना कहने के बाद राम से आज्ञा प्राप्त कर वह सेनापति दिगम्बर मुनि हो जाता है। केवली भगवान् का विहार हो जाता है। तत्पश्चात् रामचन्द्र यथाक्रम से आर्यिकाओं की वंदना करते हुए सीता के समीप पहुँचते हैं तब उनका हृदय फटने लगता है वे बोलते हैं—

"ओह! मेरी भुजाओं का आलिंगन प्राप्त करने वाली

यह सीता इस कठोर आर्यिका व्रत को कैसे पालेगी? मेघ की गर्जना से भी डरकर जो मुझे चिपट जाती थी वह वनों में सिंह, व्याघ्र के भयंकर शब्द कैसे सुनेगी? नीरस आहार कैसे करेगी? और कंकरीली पृथ्वी पर कैसे सोयेगी? मैंने यह क्या किया? विवेक शून्य हो लोकापवाद के डर से मैंने ऐसी सती सीता को कैसे खो दिया?"

जैसे-तैसे अश्रु रोककर स्वाभाविक दृष्टि से सीता के पास जाकर भक्ति और स्नेह से युक्त हो 'वंदामि' कहकर नमस्कार करते हैं और कहते हैं—

"हे भगवति! तुम धन्य हो, तुमने संसार समुद्र से पार होने के लिए जिन मार्ग का आश्रय ले लिया है। एक मैं हूँ जो मोह में फँसा हूँ। हे शान्ते! गार्हस्थ्य जीवन में मेरे द्वारा ज्ञात-अज्ञात में जो भी अपराध हुआ हो उसे क्षमा करो। हे मनस्विनि! इस समय मेरे विषाद युक्त मन को भी आप आनन्दित कर रही हैं आप मेरे द्वारा भी पूज्यता को प्राप्त हो गई हैं।"

लक्ष्मण, लव-कुश आदि भी नमस्कार करते हैं। वियोग के दुःख से व्याकुल हुए पुत्रों को आगे कर श्रीराम वापस अयोध्या में प्रवेश कर रहे हैं-उस समय प्रजा के लोग अनेक प्रकार से वार्तालाप कर रहे हैं—

"हे भाई! सीता के बिना राम शोभा नहीं पा रहे हैं।"

"अरे! राम ने सीता को कैसे गंवा दिया?"

"ओह! सीता ने यह क्या किया? उसका ऐसा कठोर हृदय कैसे हो गया।"

"अरे! राम को ऐसी कठोर परीक्षा लेना उचित था क्या?"

"बहन! सर्वप्रथम राम को गर्भिणी हालत में उसे वन में नहीं भेजना था।"

"हाँ बहन! उसी समय इन्होंने 'यह अग्नि परीक्षा' क्यों नहीं ले ली थी?"

"इसी का नाम संसार है। अरे! जब सीता को पूर्व संचित कर्म भोगना ही था तो राम को भी उस समय ऐसी बुद्धि कैसे आती? क्या तुमने नहीं सुना? केवली भगवान् ने बताया है कि इस सीता के जीव ने पूर्व भव में किसी मुनि-आर्यिका को झूठा दोष लगाया था पुनः प्रायश्चित्त भी किया था किन्तु गुरु-निंदा का पाप बिना भोगे नहीं छूटता है।"

"हाँ, हाँ, बहन! इसलिए सती सीता को इस पर्याय में अपवाद का दुःख सहना पड़ा।"

"ओह! देखो! अपने दूध से पुष्ट किये इन लव-कुश को छोड़ कर सीता ने कैसे दीक्षा ले ली?"

"बहन! उसने बहुत ही अच्छा किया है स्त्री पर्याय से छूटने का एक यही उपाय है।"

सीता घोर तपश्चरण करते हुए अपने जीवन के बासठ वर्ष व्यतीत कर देती हैं। अंत में तैंतीस दिन की सल्लेखना

लेकर मरण करके स्त्री पर्याय को छेदकर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो जाती हैं। वहाँ पर वह इन्द्र आज भी दिव्य सुखों का अनुभव कर रहा है।

(२३)

देवों की सभा लगी हुई है। सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। अर्हंतदेव की भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। उपदेश के अनन्तर इन्द्र चिंता निमग्न हो सोच रहे हैं—

"अहो! यहाँ की आयु पूर्ण कर मैं मनुष्य पर्याय कब प्राप्त करूँगा? तप के द्वारा कर्मों को नष्ट कर जिनदेव की गति को कब प्राप्त करूँगा?"

यह सुन एक देव बोलता है—

"जब तक यह जीव स्वर्ग में रहता है तभी तक उसके ऐसे भाव होते हैं किन्तु जब मनुष्य पर्याय को पा लेते हैं तो भोगों में निमग्न हो सब कुछ भूल जाते हैं। यदि विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोक से च्युत हुए श्रीरामचन्द्र को क्यों नहीं देख लेते?"

तब इन्द्र कहते हैं—

"सच में सभी बंधनों में स्नेह का बंधन अत्यन्त दृढ़ है। जो हाथ-पैरों से बँधा है वह तो मोक्ष को प्राप्त कर सकता है किन्तु स्नेह बंधन से बँधा हुआ प्राणी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। लक्ष्मण, राम में इतना अनुरक्त है कि वह

प्राण देकर भी उनका कार्य करना चाहता है और पलभर भी जिसके दूर होने पर राम बेचैन हो उठते हैं। अहो! उन दोनों का स्नेह अपूर्व ही है।"

सभा विसर्जित हो जाती है। रत्नचूल और मृगचूल नाम के दो देव इन दोनों के स्नेह की परीक्षा के लिए अयोध्या आ जाते हैं। राम के भवन में दिव्य माया से रुदन मचा देते हैं और विक्रिया से बनाये हुए मंत्री पुरोहित आदि को लक्ष्मण के पास भेज देते हैं वे वहाँ पहुँच कर कहते हैं—

"हे नाथ! राम की मृत्यु हो गई।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण के मुख से निकलता है—

"हाय! यह क्या....." इस अर्ध वाक्य के उच्चारण के साथ ही साथ वे सिंहासन पर बैठे ही बैठे प्राण रहित हो जाते हैं। सहसा लक्ष्मण की मृत्यु देख दोनों देव आश्चर्य और विषाद से युक्त हो चुपचाप अपने स्थान को चले जाते हैं। उधर लक्ष्मण की स्त्रियाँ आकर इस दुर्घटना से छाती पीट-पीट कर रोने लगती हैं। राम को समाचार मिलते ही वे वहाँ आ जाते हैं। वे लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख रहे हैं यद्यपि लक्ष्मण में मृतक के चिह्न दिख रहे हैं फिर भी राम स्नेह से परिपूर्ण हो उन्हें जीवित ही समझ रहे हैं। उनका बार-बार आलिंगन करते हुए कहते हैं—

"हे भाई! क्या कारण है? तुम क्यों ऐसे हो रहे हो, बोलो-बोलो, मेरे से वार्तालाप करो, बोलो तुम्हें किसने सताया है?"

लक्ष्मण की ऐसी दशा देख राम बार-बार मूर्च्छित हो जाते हैं। वैद्यों के द्वारा परीक्षा हो जाने पर भी वे उसे मृतक नहीं मान रहे हैं। मोह और शोक में पागल हो रोते हैं, विलाप करते हैं और तो क्या उस मृत शरीर को नहलाते हैं, वस्त्र पहनाते हैं और भोजन खिलाने की कोशिश करते हैं। इस दृश्य को देख अति दुःखी हो लव-कुश अनेक उपाय से पिता को समझाने का पुरुषार्थ करते हैं। अंत में असफल हो जाते हैं तब विरक्तमना हुए पिता को नमस्कार कर वन में जाकर अमृतस्वर महामुनि के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

राम पुत्रों की दीक्षा का समाचार सुनकर अतीव दुःखी हुए लक्ष्मण से कहते हैं—

"हे लक्ष्मण! जल्दी उठो, चलो चलें, जब तक लव-कुश दीक्षा नहीं ले लेते हैं उन्हें समझाकर वापस ले आवें।...."

"हे भाई! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?" कुछ क्षण बाद कहते हैं—

"देख! अब मैं अकेला हूँ तू मुझे जल्दी से अपने मन की बात बता दे।"

समाचार को प्राप्त करते ही विभीषण आदि राजा आकर समझाते हैं—

"प्रभो! यह मृतक शरीर है इसे छोड़ो, इसका दाह संस्कार करो।"

राम कहते हैं—

"अरे दुष्टों! तुम मेरे प्यारे भाई को मरा समझ रहे हो? जावो, जावो।" पुनः आप स्वयं भाई को कंधे पर लेकर वन में चले जाते हैं। सभी विद्याधर किंकर्तव्यविमूढ़ हैं कि क्या करना चाहिए? श्रीराम की इस पागल जैसी स्थिति में एक दिन कम ६ महीने व्यतीत हो जाते हैं। तब अकस्मात् आसन के कम्पित होने से दो देव स्वर्ग से वहाँ आते हैं और वे विपरीत क्रियायें प्रारंभ करते हैं। एक देव मनुष्य के वेष में सूखे वृक्ष को सींच रहा है, दूसरा दो मृतक बैलों के कंधों पर हल रखकर पत्थर पर बीज बोने का प्रयत्न करने लगता है। पुनः एक मनुष्य मटकी में जल डालकर मथने लगता है तो दूसरा घानी में रेत डालकर पेलना शुरू कर देता है। तब राम कहते हैं—

"अरे मूर्खों! इस सूखे ठूँठ को क्यों सींच रहे हो? अहो! इन मृतक बैलों पर हल रखने से क्या होगा? पत्थर पर बीज उगेंगे क्या? कहीं पानी से मक्खन निकलता है? अरे बालक, बालू से कहीं तेल निकलता है?" तब वे कहते हैं—

"हे नाथ! आप भी तो मृतक कलेवर को लिए घूम रहे हो।" राम कुपित होकर कहते हैं—

"अरे, अरे! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मण को मृतक क्यों कह रहे हो?"

राम आगे बढ़ जाते हैं तब एक देव अपने कंधे पर

मृतक शरीर को लेकर उनके आगे-आगे हो लेता है। तब पुनः राम कहते हैं—

"अरे रे! आप इस मुर्दे को कंधे पर क्यों रखे हुए हैं?"

तब वह वृद्ध कहता है—

"आज आपको देखकर हम लोगों को बहुत ही प्रेम हो रहा है क्योंकि समान में ही प्रेम होता है। स्वामिन्! हम सब पिशाचों के आप सर्वप्रथम मनोनीत महाराजा हैं।"

इन वचनों के निमित्त से राम का मोह शिथिल हो जाता है और वे सोचने लगते हैं—

"ओह! कहाँ मैं विद्वत् शिरोमणि राम? और कहाँ मेरी यह चेष्टा? धिक्कार हो इस मोह को!"

राम के मोह को शिथिल हुआ देख दोनों देव अपने सुन्दर रूप में हो जाते हैं। तब राम पूछते हैं—

"हे महानुभावों! आप कौन हैं?" दोनों परिचय देते हैं-

"हे नाथ! हम जटायु पक्षी के जीव हैं और यह कृतांतवक्त्र सेनापति का जीव है। हे देव! इतने दिन से आप पर विपत्ति आई थी किन्तु हम अज्ञानियों को पता ही नहीं था। हे राम! जब आपकी विपत्ति का अन्त आ गया तब आपके कर्मोदय ने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया है।"

"अहो भद्र पुरुषों! तुम दोनों ने इस समय मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है।"

अनन्तर राम सर्व परिजनों के साथ सरयू नदी के किनारे लक्ष्मण का दाह संस्कार कर देते हैं।

(२४)

राजसभा में बैठे हुए श्रीराम शत्रुघ्न से राज्य संभालने को कहते हैं किन्तु जब वह दीक्षा के भाव व्यक्त करता है तब अनंगलवण के पुत्र अनन्तलवण का राज्याभिषेक कर देते हैं।

इसी बीच अर्हदास सेठ प्रवेश करते हैं। राम पूछते हैं-

"भद्र! मुनि संघ में कुशल है ना?"

"हे नाथ! आपके इस कष्ट से पृथ्वी तल पर मुनि भी परम व्यथा को प्राप्त हुए हैं और आपके स्नेह से खिंचकर श्री सुव्रताचार्य गुरु स्वयं यहाँ पधारे हैं।"

राम हर्ष से रोमांचित हो मुनि के समीप पहुँचते हैं उनकी प्रदक्षिणा देकर वंदना करते हैं, स्तुति पूजा करते हैं पुनः कहते हैं-

'हे भगवन्! मुझे संसार समुद्र से पार करने वाली निर्ग्रंथ दीक्षा प्रदान कीजिए।"

गुरु की आज्ञा पाकर जब राम वस्त्रालंकार त्याग कर केशलोंच करते हैं, उस समय देवगण रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य करने लगते हैं। विभीषण, सुग्रीव आदि भी दीक्षा ले लेते हैं। उस समय कुछ अधिक सोलह हजार राजा मुनि हो जाते हैं और सत्ताईस हजार प्रमुख स्त्रियाँ 'श्रीमती' आर्यिका के पास साध्वी हो जाती हैं।

गुरु की आज्ञा लेकर राम एकाकी विहार करते हुए वन में जाकर प्रतिमा योग धारण कर लेते हैं। रात्रि में ही उन्हें अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। पाँच दिन के उपवास के बाद योगी श्रीराम पारणा के लिए नंदस्थली नगरी में आते हैं। उनके रूप सौन्दर्य को देखते ही लोग पागल के समान हो जाते हैं। शहर की गलियों में बेशुमार भीड़ हो जाती है। श्रावक-श्राविकायें पड़गाहन करने में तत्पर हो उच्च स्वर से बोलते हैं—

"हे स्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ।

"हे मुनीन्द्र! जय हो, जय हो, यहाँ आइये, आइये, ठहरिये, ठहरिये।"

महिलाएं तरह-तरह की वस्तुएं मँगाने लगती हैं—

"अरी सखी! गन्ना ले आ"

"अरी वह सुवर्ण की झारी लाओ।"

"अरी चतुरे! खीर ले आ! अच्छा, मिश्री और ले आ।"

इत्यादि प्रकार से इतना हल्ला हो जाता है कि हाथी घोड़े भी अपने-अपने बंधन को तोड़कर उपद्रव मचाते हुए इधर-उधर भागने लगते हैं। इतना कोलाहल देख राजा प्रतिनंदी अपने कर्मचारियों को भेजता है। वे आकर पड़गाहन करने वालों को तितर-बितर करके मुनि से कहते हैं—

"प्रभो! राजा के यहाँ पधारिये, वहाँ उत्तम भोजन कीजिए।"

मुनिराज अन्तराय समझकर वन में वापस चले जाते

हैं और पुनः पाँच उपवास के बाद ऐसा वृत्तपरिसंख्यान लेते हैं कि—

"यदि कोई वन में ही पड़गाहेगा तो आहार करूँगा अन्यथा नहीं।"

अकस्मात् शत्रु द्वारा हरे जाने पर राजा प्रतिनंदी वन में ही रानी के साथ भोजन विधि करने को तैयार होते हैं कि सामने से श्रीराम मुनि को देखकर भक्ति से पड़गाहन करके नवधा भक्ति से आहार कराते हैं। देवों के द्वारा पंचाश्चर्य वृष्टि होने लगती है। राम को अक्षीण महानस ऋद्धि भी हो गई थी अतः उस दिन राजा के यहाँ अन्न अक्षय हो जाता है। श्रीरामचन्द्र महामुनि वन में ही आहार का नियम लेते रहते हैं। देवांगनाएं उनकी पूजा करती रहती हैं।

कई एक वर्ष बाद श्रीराम कोटिशिला पर पहुँचकर रात्रि में प्रतिमायोग से स्थित हो ध्यान में लीन हो जाते हैं।

(२५)

श्रीरामचन्द्र-सीता आदि की भवावली

राजा विभीषण ने सकलभूषण केवली को नमस्कार कर पूछा—

"भगवन्! श्रीराम ने पूर्व भवों में कौन-सा पुण्य किया था? सती सीता के शील में लोकापवाद क्यों हुआ? रावण से लक्ष्मण का वैर कब से था? इत्यादि। मैं आपके दिव्यवचनों

से इन सभी के पूर्वभवों को सुनना चाहता हूँ।"

तब केवली भगवान की दिव्यध्वनि खिरी जिसे कि सभी ने श्रवण किया।

"इस संसार में कई भवों से राम-लक्ष्मण का रावण के साथ वैर चला आ रहा है। उसे सुनो, इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में क्षेत्र नाम का एक नगर था। वहाँ पर नयनदत्त वैश्य की सुनंदा पत्नी के दो पुत्र थे, धनदत्त और वसुदत्त। वहीं यज्ञबलि नाम का एक ब्राह्मण था वह वसुदत्त का मित्र था। इसी नगर में सागरदत्त वणिक् की पत्नी रत्नप्रभा से गुणवती नाम की एक पुत्री हुई थी और गुणवान नाम का एक पुत्र था। इसी नगर में एक श्रीकांत वणिक् था।

गुणवती का उसके पिता और भाई धनदत्त से विवाह करना चाहते थे किन्तु उसकी माँ श्रीकांत को धनाढ्य समझकर उसे देना चाहती थी। तब धनदत्त के भाई वसुदत्त ने क्रोध के वश हो अपने मित्र यज्ञबलि के उपदेश व सहयोग से श्रीकांत के घर जाकर उस पर शस्त्र प्रहार किया, उसने भी वसुदत्त पर शस्त्र प्रहार किया, दोनों एक-दूसरे को मारकर मर गये। इधर धनदत्त को गुणवती न मिलने से वह घर से निकलकर अनेक देशों में भ्रमण करता रहा। गुणवती ने भी धनदत्त के साथ ही विवाह करना चाहा था किन्तु उसके साथ विवाह न हो पाने से वह दुःखी हुई। मिथ्यात्व के निमित्त जैन शासन से और दिगम्बर

गुरुओं से द्वेष रखती थी।

आयु के समाप्त होने पर यह गुणवती आर्तध्यान से मरकर वहीं वन में हरिणि हुई। उसी वन में ये वसुदत्त और श्रीकांत मरकर हरिण हुए थे। पूर्व संस्कार के निमित्त से यहाँ भी ये दोनों इसी हरिणी के लिए आपस में एक-दूसरे को मारकर मरे और सूकर हो गये। पुनः ये दोनों हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेड़िया और मृग हुए। सभी पर्यायों में ये परस्पर में द्वेष रखते हुए एक-दूसरे को मारते और मरते रहे।

इधर वह धनदत्त वैश्य पुत्री गुणवती को न प्राप्त कर दुःखी हुआ। देश-देश में घूम रहा था। एक दिन मार्ग में थका हुआ वह सूर्यास्त के बाद मुनियों के आश्रम में पहुँच गया। वह प्यासा था अतः वह मुनियों से कमंडलु का पानी पीने के लिए मांगने लगा। तभी एक दिगम्बर मुनि ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

"हे भद्र! रात्रि में पानी तो क्या अमृत पीना भी उचित नहीं है। जब नेत्रों से दिखाई नहीं देता है ऐसे समय में सूक्ष्म जन्तुओं का संचार बहुल हो जाता है इसलिए तू रात्रि में भोजन मत कर.....।"

इत्यादि प्रकार से मुनिराज के मुख से धर्मोपदेश श्रवण कर वह धनदत्त प्यास से उत्पन्न आकुलता को भूल गया और उसका चित्त दया से आर्द्र हो गया। वह अल्पशक्ति अनुभव कर महाव्रती तो नहीं बन सका किन्तु अणुव्रती

श्रावक बन गया। अनन्तर आयु की समाप्ति में मरकर सौधर्म स्वर्ग में उत्तम देव हो गया। वहाँ पुण्योदय से प्राप्त देवांगनाओं के मध्य दिव्य सुखों को भोगने लगा।

वहाँ से च्युत होकर वह धनदत्त का जीव महापुर नगर के जैनधर्म निष्ट, मेरु सेठ की धारिणी भार्या से "पद्मरुचि" नाम का पुत्र हुआ। यह पद्मरुचि युवावस्था में एक बार घोड़े पर चढ़कर गोकुल की ओर जा रहा था वहाँ मार्ग में एक बूढ़े बैल को पृथ्वी पर पड़े हुए देखा। वह उठने-चलने में समर्थ नहीं था अतः मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। पद्मरुचि श्रावक ने घोड़े से उतरकर उसके पास बैठकर उसे आदरपूर्वक कुछ उपदेश सुनाया पुनः उसके कान में णमोकार मंत्र सुनाता रहा। मंत्र सुनते-सुनते उस बैल के प्राण निकल गये।

मंत्र के प्रभाव से वह बैल का जीव उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की रानी श्रीदत्ता के गर्भ में आ गया और नौ महीने बाद उसके जन्मते ही राजा ने पुत्ररत्न के हर्ष से बहुत ही उत्सव किया पुनः उसका नाम "वृषभध्वज" रख दिया। इस राजकुमार को बचपन में जातिस्मरण हो गया कि—

"मैं पूर्वभव में बैल था। वृद्धावस्था में गली में पड़ा-पड़ा दुःख भोग रहा था। एक श्रावक ने मुझे पंच नमस्कार मंत्र सुनाया था जिसके प्रभाव से मैं राजपुत्र हो गया हूँ।"

अतः वह णमोकार मंत्र का सदा स्मरण किया करता

था। एक दिन घूमते हुए उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ पूर्व में बैल का मरण हुआ था। उस राजकुमार ने आस-पास में घूमते हुए अपने पूर्व पर्याय के बैल अवस्था में बोझा ढोने, भूखे-प्यासे घूमने, पड़े रहने आदि के सभी स्थान पहचान लिए। वह हाथी से उतरकर दुखित हो बहुत देर तक बैल के मरने की भूमि को देखता रहा और सोचता रहा।

"मेरे समाधिमरण के दाता वे श्रावक महापुरुष कौन हैं?" पुनः उनको खोजने का उसने एक उपाय सोचा। उसने उसी स्थान पर कैलाशपर्वत के शिखर के समान उन्नत एक जिनमंदिर बनवाया उसमें अनेक चित्र बनवा दिये उसी मंदिर के द्वार पर एक जगह उसने बैल को पंच नमस्कार मंत्र सुनाते हुए पुरुष का चित्र भी बनवा दिया और मंदिर के द्वार पर उसकी परीक्षा के लिए चतुर कर्मचारी नियुक्त कर दिये।

एक दिन जिनमंदिर की वंदना के लिए पद्मरुचि श्रावक वहाँ आ गया तब वह उस बैल के चित्र को आश्चर्ययुक्त हो एक टक देखता रहा। तभी द्वार पर नियुक्त कर्मचारियों ने यह समाचार राजपुत्र को पहुँचा दिया। वृषभध्वज राजकुमार तत्क्षण ही हाथी पर बैठकर वहाँ आ गये और चित्रपट को तल्लीनता से देखते हुए पद्मरुचि के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया।

पद्मरुचि ने उस चित्र का परिचय देते हुए बताया कि—

"यह बैल दुःखी हुआ सिसक रहा था तब मैंने इसे

महामंत्र सुनाया था.....।"

इतना सुनते ही राजपुत्र ने कहा—

"स्वामिन्! वह बैल का जीव मैं ही हूँ। मुझे जातिस्मरण के हो जाने पर भी मेरे उपकारी कौन हैं? जब मैं यह पता नहीं लगा सका तभी मैंने यह मंदिर बनवाकर यह चित्रपट मात्र आपको खोजने के लिए ही बनवाया था.....। सो आज आप जैसे परमोपकारी को पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।" तुमने मेरा जो भला किया है वह न माता कर सकती है न पिता कर सकते हैं, न सगे भाई और न परिवार के अन्य लोग ही कर सकते हैं और तो क्या देवगण भी वैसा उपकार नहीं कर सकते हैं। तुमने जो मुझे महामंत्र सुनाकर पशुयोनि से मनुष्य पर्याय में पहुँचाया है उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं चुका सकता फिर भी मेरी आप में परमभक्ति है, सो हे नाथ! मुझे आज्ञा दो मैं आपकी क्या सेवा करूँ? हे स्वामिन् ! आप यह मेरा समस्त राज्य ले लो और मैं अब आपका दास बनकर आपकी जीवन भर सेवा करता रहूँगा।" तब पद्मरुचि ने कहा—

"हे महापुरुष! यह महामंत्र का ही प्रभाव है मैं तो इसमें निमित्त मात्र हूँ।....."

उस मंदिर में दोनों का आपस में इतना प्रेम हो गया कि दोनों अभिन्न मित्र बन गये। दोनों ने मिलकर राज्य संचालन किया उन दोनों का संयोग चिर संयोग हो गया जो कि आगे मोक्ष जाने तक

रहा है। आगे चलकर ये पद्मरुचि तो श्रीरामचन्द्र हुए हैं और वृषभध्वज सुग्रीव हुए हैं दोनों एक साथ मांगीतुंगी से मोक्ष गये हैं।

उस समय वे दोनों मित्र सम्यक्त्व और अणुव्रत से सहित थे। उन्होंने मिलकर पृथ्वी पर अनेक जिनमंदिर बनवाये और बहुत सी रत्नमयी जिनप्रतिमाएं विराजमान करायीं। सैकड़ों स्तूपों से पृथ्वी को अलंकृत किया। अन्त में समाधि से मरण कर वृषभध्वज ईशान स्वर्ग में देव हुआ। इधर पद्मरुचि भी समाधिमरण से मरकर उसी ईशान स्वर्ग में वैमानिक देव हो गया।

कालांतर में यह पद्मरुचि का जीव देव वहाँ से चयकर विदेह क्षेत्र के विजयार्ध के राजा विद्याधर नंदीश्वर की कनकाभा रानी से नयनानंद नाम का पुत्र हुआ। यहाँ भी मुनिदीक्षा लेकर तपश्चरण के प्रभाव से मरणकर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हो गया। वहाँ से चयकर क्षेमपुरी नगरी में राजा विपुलवाहन की रानी पद्मावती के श्रीचन्द्र नाम का पुत्र हुआ। यहाँ भी ये समाधिगुप्त मुनि से जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महान तप अनुष्ठान करके ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र हो गये।

श्री सकलभूषण केवली कहते हैं-"हे विभीषण! इस ब्रह्मेंद्र की विभूति का वर्णन बृहस्पति सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता है। अनंतर ये ब्रह्मेन्द्र वहाँ से चयकर राजा दशरथ की रानी कौशल्या—अपराजिता की पवित्र कुक्षि

से श्रीरामचन्द्र नाम के बलभद्र हुए हैं।

अब सीता और रावण आदि के भवों का खुलासा करते हैं—

मृणालकुंड नगर में विजयसेन राजा का पुत्र वज्रकंबु था इसके शंभु नाम का पुत्र हुआ। इस राजा के पुरोहित का नाम श्रीभूति था। वह "गुणवती" कन्या का जीव मुनिनिंदा के पाप से हथिनि हुई थी वहाँ एक बार नदी के किनारे कीचड़ में फँस गई और मरणासन्न स्थिति में सूं-सूं कर रही थी तभी एक दयालु विद्याधर ने उसे णमोकार मंत्र सुना दिया। जिसके प्रभाव से वह वहाँ से मरकर इधर पुरोहित की पत्नी सरस्वती से "वेदवती" नाम की पुत्री हो गई। एक बार दिगम्बर मुनि की हंसी करते हुए पिता के द्वारा समझाये जाने पर वह श्राविका हो गई।

यह अतिशय रूपवती थी अतः कई एक राजकुमार इसे चाहते थे इनमें भी शंभु राजकुमार खासकर इससे विवाह करना चाहता था किन्तु पुरोहित श्रीभूति ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मिथ्यादृष्टि राजा चाहे कुबेर ही क्यों न हो उसे मैं अपनी पुत्री नहीं दूँगा। इससे कुपित हो शंभु ने रात्रि में सोते हुए पुरोहित को मार डाला। यह मरकर जैन धर्म के प्रसाद से देव हो गया।

वेदवती ने भी पिता के अभिप्राय अनुसार शंभु के साथ विवाह करने से इंकार कर दिया। तब एक दिन काम से संतप्त हो शंभु ने वेदवती से बलात् ही मैथुन सेवन किया। जिससे

वह अत्यन्त कुपित हो बोली–"अरे नीच! तूने मेरे पिता को मारा है पुनः जबरन मेरे शील को भंग किया है अतः "मैं अगले भव में तेरे वध के लिए ही उत्पन्न होऊँगी।" ऐसा निदान बंध कर लिया। अनंतर इस बाला ने हरिकांता आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा लेकर घोरातिघोर तपश्चरण किया।

आर्यिका होने से पहले एक बार इस वेदवती ने उद्यान में सुदर्शन मुनि को देखा था वहाँ उन मुनि की सुदर्शना बहन आर्यिका अवस्था में उनके पास बैठी थी वे मुनि और उसे कुछ उपदेश दे रहे थे। इस वेदवती ने गाँव में आकर लोगों से कहा–"ये मुनि एक सुन्दर महिला से वार्तालाप कर रहे थे अतः वे निर्दोष कैसे हो सकते हैं? इत्यादि।"

कुछ लोगों ने इसकी बात पर विश्वास नहीं किया और कुछ लोग विश्वास करने लगे। जब इस अपवाद का श्री मुनिराज को पता चला तब उन्होंने नियम ले लिया कि "जब तक मेरा अपवाद दूर नहीं होगा मैं आहार नहीं करूँगा।" तभी वन देवता ने वेदवती को फटकारा जिससे उसने सभी से कहना शुरू किया कि "मैंने यह झूठा आरोप लगाया था।" पुनः उसने मुनि से भी क्षमा कराकर अन्य जनों को भी विश्वास दिलाया।

इस प्रकार वेदवती ने जो बहन–भाई की निंदा की थी उसी के फलस्वरूप सीता की पर्याय में उसे लोकापवाद का कष्ट उठाना पड़ा है। आचार्य कहते हैं कि–"यदि सच्चा दोष

भी देखा हो तो भी जिनमतावलंबी को नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता हो तो उसे सब प्रकार से रोकना चाहिए। फिर जो लोक में विद्वेष फैलाने वाले ऐसे जैन शासन संबंधी दोषों को कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसार में भटकता रहता है। किये हुए दोष को प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न का बड़ा भारी गुण है। अज्ञान या मत्सरभाव से भी जो किसी के मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनधर्म के बिल्कुल ही बर्हिभूत है[१]।"

वेदवती समाधिमरण के प्रभाव से ब्रह्मस्वर्ग में देवी हुई। वहाँ से चयकर राजा जनक की रानी विदेहा से सीता नाम की पुत्री हुई है। गुणवती की पर्याय में जो गुणवान भाई था वही कुंडलमंडित होकर स्वर्ग गया था वहाँ से च्युत हो यह भी विदेहा के गर्भ में एक साथ आ गया और ये दोनों युगलिया भाई–बहन हुए हैं भाई का नाम भामंडल है।

---

१. दृष्टो सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता।
उच्यमानोऽपि चान्येन वार्यः सर्वप्रयत्नतः।।२३२।।
ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितं।
प्रतिपद्य चिरं दुःखं संसारमवगाहते।।२३३।।
सम्यग्दर्शनरत्नस्य गुणोऽत्यंतमय महान् ।
यद्दोषस्य कृतस्यापि प्रयत्नादुपगूहनम् ।।२३४।।
अज्ञानान्मत्सराद्वापि दोषं वितथमेव तु।
प्रकाशयञ्जनोऽत्यंतं जिनमार्गाद्बहिः स्थितः।।२३५।।
(पद्मपुराण, पर्व १०६)

धनदत्त का भाई वसुदत्त ही लक्ष्मण हुआ है और उसका मित्र यज्ञबलि ही तू विभीषण हुआ है। जो वृषभध्वज राजकुमार था वही यह सुग्रीव हुआ है। श्रीकांत का जीव ही शंभु हुआ था पुनः वेदवती को न प्राप्त कर मिथ्यात्व से संसार में भ्रमण करता हुआ कदाचित् वह कुशध्वज ब्राह्मण की पत्नी सावित्री से प्रभासकुंद पुत्र हुआ वहाँ विचित्रसेन मुनि के समीप दिगंबरी दीक्षा धारण कर खूब तपश्चरण किया। एक बार सम्मेद शिखर की वंदना के लिए गया था। वहाँ आकाश में कनकप्रभ विद्याधर की विभूति देखकर निदान कर लिया, कि-"यदि मेरे तपश्चरण में कुछ माहात्म्य है तो मैं भी आगे ऐसा ही विद्याधर का वैभव प्राप्त करूँ।"

श्री गौतम स्वामी कहते हैं-"अहो! इस मूर्खता को धिक्कार हो! देखो, उसने त्रिलोकीमूल्य रत्न को शाक की एक मुट्ठी में बेंच दिया।"

यह प्रभासकुंद मुनि अंत में समाधिमरण से मरकर सानत्कुमार स्वर्ग में देव हो गया वहाँ से च्युत हो लंका नगरी के राजा रत्नश्रवा की रानी कैकसी से यह "दशानन" पुत्र हुआ है। इसने बालिमुनि पर उपसर्ग करने के लिए जब कैलाशपर्वत उठाने की चेष्टा की तब उन मुनि की ऋद्धि के प्रभाव से कैलाश पर्वत के नीचे दबने से रोने लगा था तभी से इसका "रावण" यह नाम प्रसिद्ध हो गया था।

गुणवती के निमित्त से जो वसुदत्त ने श्रीकांत को मारा

था तभी से इन दोनों का वैर चला आ रहा था यही कारण है कि लक्ष्मण के द्वारा यह रावण मारा गया है।

इस प्रकार सकलभूषण केवली का उपदेश सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। अनेक भव्यजीव रावण और लक्ष्मण के परस्पर के कई जन्मों के वैर को सुनकर परस्पर में निर्वैर हो गये। मुनिगण संसार से भयभीत हो गये और कितने ही राजा लोग प्रतिबद्ध हो दीक्षा ग्रहण कर साधु हो गये।

"अहो! सम्यक्त्व का प्रभाव अचिन्त्य है। आगे रावण और लक्ष्मण के जीव सीता के जीव चक्रवर्ती के पुत्र होकर सगे भाई-भाई होंगे। इत्यादि भविष्य का कथन आगे किया जावेगा।

(२६)

सीता का जीव प्रतीन्द्र अपने अवधिज्ञान से उन्हें देखकर स्नेह से आर्द्र हो वहाँ आता है और सोचता है कि "मैं इन्हें ध्यान से विचलित कर दूं तो ये मोक्ष न जाकर स्वर्ग में आ जावेंगे। यहाँ पर हमारे से मित्रता को प्राप्त होंगे। चिरकाल तक हम दोनों मेरु, नन्दीश्वर आदि की वंदना कर पुनः मर्त्यलोक में जन्म लेकर एक साथ निर्वाण प्राप्त करेंगे।' ऐसा सोचकर वहाँ आकर अपना सीता का रूप बनाकर उन्हें विचलित करने के लिए अनेक उपाय करता है, अनेक स्त्रियों को बनाकर उनके द्वारा गीत, नृत्य, हाव-भाव का

प्रदर्शन कराते हुए ध्यान में विघ्न डालना चाहता है किन्तु महामना राम सुमेरु के समान अचल हैं।

वे ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तब स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र आदि के आसन कम्पित होते ही सब एक साथ वहाँ आ जाते हैं। आकाश में अधर समवसरण की रचना हो जाती है। श्रीराम केवली भगवान् उसमें कमलासन पर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। चारण ऋद्धिधारी मुनि आदि सभा में आ जाते हैं। बारह कोठों में सब यथा योग्य बैठ जाते हैं। उस समय यह सीता का जीव प्रतीन्द्र भी बार-बार नमस्कार कर प्रभु से अपने अपराध क्षमा करता हुआ प्रार्थना करता है—

'हे नाथ! मुझ दुर्बुद्धि के द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न होइये और मुझे भी कर्मों का अन्त प्रदान कीजिए।"

मुनिराज की दिव्यध्वनि खिरती है—

"हे सुरेन्द्र! राग छोड़ो, वैराग्य से ही मुक्ति होती है और रागी मनुष्य संसार में डूब जाता है। जिस प्रकार कंठ में शिला को बांधकर नदी नहीं तिरी जा सकती है उसी प्रकार राग-स्नेह से संसार नहीं पार किया जा सकता है। जो गुरुओं के कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है वही संसार का अंत कर सकता है।"

दिव्य उपदेश को सुनकर प्रतीन्द्र पूछता है—

"भगवन् ! दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ गये हैं?

सभी मुझे बताओ।"

दिव्य वाणी खिरती है—

"हे सुरेन्द्र! दशरथ आनत स्वर्ग में देव हुए हैं। कौशल्या आदि माताएं, जनक और कनक आनत स्वर्ग में ही देव हुए हैं। लव-कुश निर्वाण को प्राप्त करेंगे, भरत भी मोक्ष पधारेंगे और तुम्हारा भाई भामंडल उत्तर कुरु भोगभूमि में आर्य हुआ है। हनुमान, सुग्रीव आदि भी इसी भव में मोक्ष जायेंगे।

"हे नाथ! मुझे निर्वाण की प्राप्ति कब होगी?"

"सीतेन्द्र! रावण और लक्ष्मण नरकधरा से निकलकर विदेह क्षेत्र मे भाई-भाई होंगे पुनः देव होकर राजपुत्र होंगे पुनः स्वर्ग जायेंगे। तू स्वर्ग से आकर भरत क्षेत्र में चक्ररत्न नाम का चक्रवर्ती होगा तब रावण-लक्ष्मण के जीव वहाँ से आकर इन्द्ररथ और मेघरथ नाम के तुम्हारे पुत्र होंगे। रावण का जीव तीर्थंकर होगा तब तुम अनुदिश से आकर उनके प्रथम गणधर होवोगे और निर्वाण को प्राप्त करोगे। पुष्कर द्वीप के विदेह क्षेत्र में लक्ष्मण का जीव तीर्थंकर और चक्रवर्ती होकर निर्वाण को प्राप्त करेगा। मैं भी आज से सात वर्ष के बाद निर्वाण धाम को प्राप्त करूँगा।"

आगामी भवों को सुनकर सीतेन्द्र बहुत ही प्रसन्न हो जाता है। वह पुनः तृतीय नरक में जाकर रावण और लक्ष्मण के जीव को देखता है। शंबूक असुरकुमार देव हुआ था सो

वहाँ लक्ष्मण के विरुद्ध प्रेरणा दे देकर रावण को लड़ा रहा है। सीतेन्द्र कहता है—

"रे रे पापी शंबूक! तू यह क्या कर रहा है? अरे देख! वैर का फल कितना कटु होता है? अब तो अधर्म को छोड़ और धर्म की शरण ले।" पुनः नारकियों को सम्बोधन करते हुए कहता है-

"अरे नारकियों! धर्म के बिना तुम लोग यहाँ आये हो अतः अब पाप से डरो। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित सम्यक्त्व को ग्रहण करो।"

रावण और लक्ष्मण के जीव पूछते हैं—

"आप कौन हैं?" सीतेन्द्र कहता है—

"मैं सीता का जीव प्रतीन्द्र हूँ। तुम्हें मैं यहाँ से निकालकर अभी ऊपर ले चलता हूँ।"

यह कहकर जैसे ही इन्द्र उन दोनों को उठाता है वे नवनीत के समान पिघल जाते हैं पुनः उनका शरीर बन जाता है। जब लाखों उपाय के बाद भी वह इन्द्र उन्हें ऊपर लाने के लिए समर्थ नहीं होता है तब कहता है—

"हे भव्यों! अब यहाँ पर तुम सम्यक्त्व रत्न को ग्रहण करो वही तुम्हें उत्तम गति में ले जाने में समर्थ है। हम तो क्या साक्षात् जिनेन्द्र भी तुम्हें यहाँ से आयु पूरी हुए बगैर अन्यत्र ले जाने के लिए समर्थ नहीं हैं।"

दोनों नारकी सम्यक्त्व ग्रहण कर लेते हैं और कहते हैं—

"हे देवेन्द्र! जाओ जाओ, तुम स्वर्गों के सुख का अनुभव

करो। अब हमें श्री जिनेन्द्रदेव की ही शरण है जब हम यहाँ से निकलेंगे तब जिनदेव कथित धर्म को ही धारण करेंगे।"

उस समय सीतेन्द्र केवली भगवान् द्वारा कहे गये आगामी भवों को उन्हें सुना देता है और कहता है—

"हे रावण! जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसका बलात् उपभोग नहीं करूँगा इस प्रतिज्ञा के निभाने से तूने मेरे साथ बलात्कार नहीं किया था इसी स्नेह से मैं आज यहाँ आकर तेरा हित करने में तत्पर हुआ हूँ।"

पुनः पुनः लक्ष्मण को सम्बोधन कर उसके गुणों का स्मरण करता हुआ वह देवेन्द्र अपने स्थान को चला जाता है।

राम की आयु सत्रह हजार वर्ष की थी और शरीर की ऊँचाई ६४ हाथ प्रमाण थी। मुनि होने के बाद पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर वे योगों का निरोध करते हैं और अघातिया कर्मों का भी अंत करके शाश्वत सिद्धक्षेत्र को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ पर वे अनंत-अनंत काल तक परमानंदमय अव्याबाध सुख का अनुभव करते रहेंगे। भगवान् श्रीरामचन्द्र इस संसार में अब कभी भी पुनर्भव धारण नहीं करेंगे ऐसे महामना श्रीरामचन्द्र का मर्यादाशील आदर्श जीवन सभी पाठकजनों को मर्यादा पालन करने रूप आदर्श-जीवन की चिरकाल तक प्रेरणा देता रहेगा।